श्रीः ।

महाकविश्रीकालिदासविरचितं

मेघदूतम्

मुरादाबादनिवासि-पण्डित-रामस्वरूप-कृत-
पदपाठान्वयार्थभावार्थटिप्पणीसमेतम् ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बंबई.

संवत् १९९६, शके १८६१.

1939.

मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

प्रिय काव्यरसलोलुप सहृदय महाशय !

यह बात तो प्रसिद्ध है कि कालिदास नामा कवि सकलकविकुलशिरोमणि, अलौकिककवितावनिताविहारमंदिर और परम प्रसिद्ध था. कहाभी है कि—

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।

इसको अलौकिक कविताशक्ति भगवती श्रीकालिकाजीके प्रसादसे प्राप्त हुई थी और यह कालिकाभक्त होनेसेही कालिदास इस अन्वर्थ नामसे प्रसिद्ध हुआ. इसके रघुवंशादिक काव्य शाकुंतलादिक नाटकग्रंथ बालसे वृद्धतक सबको प्रसिद्ध, मान्य तथा रोचक हैं.

इसके कालविषय महाविवाद है, आजतक किसी (भारतवर्षीय अथवा पाश्चात्य) काभी सिद्धांत दृढ नहीं हुआ. कोई कहते हैं कि यह भोजराजसभामें था, कोई कहते हैं कि श्रीविक्रमार्कसभामें था, कोई तो यह स्वतंत्रही था किसीकाभी आश्रय इन्होंने नहीं किया, इस प्रकार कहते हैं. यहभी निश्चय नहीं होता कि कालिदास कितने हो गये और उनमेंसे किसने ऊपर लिखे काव्यनाटकादि ग्रंथ किये, कैसाभी हो परंतु यह (काव्यकर्ता) कालिदास बहुतही प्राचीन है इस विषयपर किसीकी विप्रतिपत्ति नहीं.

अस्तु इस अलौकिक कविताप्रपंचविधाताने कामिजनोंकी विरहावस्थामें क्या अवस्था होती है इसके प्रदर्शनके मिषसे अपनी वाग्देवताका वैचित्र्य दिखाके यशोलाभार्थ यह मेघदूत नाम खंडकाव्य बनाके प्रसिद्ध किया है कि—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कांतासंमिततयोपदेशयुजे ॥

कविलोग तो अपनी वाग्देवताके बलसे राजाको रंक कर देते हैं और रंकको राजा करते हैं सजीवको निर्जीव करते तथा निर्जीवको सजीव करते हैं. कविताके विषयमें लिखा है कि-

नियतिकृतनियमरहिताऽऽह्लादैकमयी ह्यनन्यपरतंत्रा ॥

इस प्रकृत मेघदूत काव्यमें पूर्वमेघ और उत्तरमेघ इस नामसे दो भाग किये हैं उनमेंसे प्रथम भागमें किसी विरही यक्षके द्वारा निर्जीव मेघको दूत कल्पना करके रामगिरि पर्वतसे कैलासपर्वततक उज्जायिन्यादिक्षेत्रतीर्थवर्णनपूर्वक मार्ग कहा है, और उत्तर भागमें अलकापुरीवर्णन नायिकावर्णन और संदेशकथनवर्णन किया है.

उसपर मुरादाबादवास्तव्य पंडित-रामस्वरूपशर्म्मासे सब लोकोंके हितार्थ पदपाठ, अन्वयपाठ, अन्वयार्थ, भावार्थ और टिप्पणी इन पांच प्रकारसे भाषामें व्याख्यान कराके बढिया ग्लेज कागजपर सुन्दर छोटे अक्षरोंसे छापा है. इस प्रकार ऐसा उपयोगी पुस्तक कहींभी नहीं छपा. इस निरुपम सर्वोपयोगी रसाल पुस्तकको ग्राहकगण लेके मेरे श्रमको सफल करें,इति शम् ॥

आपका-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस-बम्बई.

॥ श्रीः ॥

भाषाटीकादिसहितं

मेघदूतम् ।

पूर्वमेघः ।

जयति यदुवंशतिलको देवकीहृदयनन्दनः कृष्णः ।
मधुप्रभृतिनिधनकारी भक्तगतिः पुण्डरीकाक्षः ॥ १ ॥
श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीनन्दनं परम् ।
कालिदासकृतेः कुर्वे नृभाषामन्वयानुगाम् ॥ २ ॥

कश्चित्कांताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

१-" आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम् " इस प्रमाणानुसार आशीर्वादात्मक नमस्कारात्मक अथवा काव्यमें प्रतिपादनीय विषय (वस्तु) का निर्देश इन तीनोंमेंसे किसी प्रकारका मंगल काव्यकी आदिमें करना चाहिये ऐसा कविसम्प्रदाय है । इसीके अनुसार कविने इस प्रथम श्लोकमें वस्तुनिर्देशात्मक मंगल कराहै ।

२-इस काव्यमें सब छन्द मन्दाक्रांता हैं इस कारण उसका लक्षण लिखते हैं- " मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ तगौ गः समुद्रर्तुस्वराः (छन्दोवृत्त अ० ७ सू० १८) जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें म, भ, न, त, त, यह पांच गण हों और पीछेसे दो अक्षर गुरु हों वह मन्दाक्रान्ता छन्द होता है इसमें क्रमसे ४, ६, ७ अक्षरोंपर बिराम होता है । अनेक वृत्त हैं परन्तु छन्दःशास्त्रका ऐसा नियम है कि अमुक अमुक रसमें अमुक अमुक छन्द वर्णन करे ऐसा साहित्यशास्त्र जाननेवालोंका मत है । जैसे-" प्रावृट्प्रवास-मय मन्दाक्रान्ता विराजते । " वर्षाकाल और प्रवाससमयमें मन्दाक्रान्ता शोभित होती है, इस कारण इस काव्यमें मन्दाक्रान्ता वृत्तही कहा है । और " सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते । सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगाङ्गना ॥ " जिस प्रकार उत्तम चाबुकवालेके वशमें अरबी घोडी होती है उसी प्रकार कालिदासके वशमें होकर मन्दाक्रान्ता शोभित होती है ।

पदच्छेदः–कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः शापेन अस्तङ्गमित-महिमा वर्षभोग्येण भर्तुः यक्षः चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छाया-तरुषु वसतिम् रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

अन्वयः–स्वाधिकारप्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे ॥ १ ॥

अर्थः–अपनेको सौंपे हुए कार्य्यसे असावधान स्त्रीके वियोगसे असह्य एक वर्षपर्यन्त भोगने योग्य कुबेरके शापसे नष्ट हो गया है प्रभाव जिसका ऐसा कोई यक्ष जनकपुत्रीके स्नान करनेसे पवित्र जलोंकरके युक्त घनी छायावाले हैं वृक्ष जहाँ ऐसी चित्रकूटपर्वतकी पर्णशालाओंके विषय निवास करता हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ–कोई यक्ष स्त्रीके विलासमें मग्न होकर अपने कार्यसे असावधान होगया इस कारण उसके स्वामी कुबेरने (तुझको वर्ष भरपर्यन्त स्त्रीका विरह होगा) इस प्रकार शाप दिया, इस दुःसह शापसे प्रभावहीन वह यक्ष (कहीं पवित्र स्थानमें जाकर दिनोंको व्यतीत करना चाहिये ऐसा विचार कर) सीताके स्नान करनेसे जहांके जल पवित्र थे और जहां घने वृक्षोंकी छाया थी ऐसे चित्रकूट पर्वतपर जाकर रहने लगा ॥ १ ॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ॥
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

१–श्रीरामचन्द्र वनवाससमयमें चित्रकूटपर रहे थे इस कारण उसका नाम "रामगिरि" पड गया । यह पर्वत प्रयागके परलीओर भारद्वाज मुनिके आश्रमसे साढेतीन योजनपर है अर्थात् १४ कोशपर मन्दाकिनीनदीके दक्षिण किनारेपर है इसका वृत्तान्त वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ९२ श्लोक १०–११ में है ।

पदच्छेदः-तस्मिन् अद्रौ कतिचित् अबलाविप्रयुक्तः सः कामी नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघम् आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् ददर्श ॥ २ ॥

अन्वयः-तस्मिन् अद्रौ अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः कामी सः कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् मेघम् ददर्श ॥ २ ॥

अर्थः-तिस पर्वतके विषय स्त्रीसे विरहित सुवर्णके कडे निकल जानेसे शून्य है पहुँचा जिसका ऐसा विषयासक्त वह यक्ष कुछ महीनोंको व्यतीत करके आषाढमासकी प्रतिपदाके दिन शिखरको आश्रय करनेवाले पर्वतके तटके विषय तिर्य्यक् दन्तप्रहार करनेवाले हस्तीकी समान दीखने योग्य मेघको देखता हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ-कामपीडित और स्त्रीके विरहसे अत्यन्त दुर्बल होनेसे जिसके हस्तोंमेंसे कडे निकल पडे हैं ऐसे उस यक्षने उस चित्रकूट पर्वतके विषय आठ महीने बीतनेपर जब नववां आषाढ महीना लगा

१-यहां " कतिचित् " इस शब्दमें कति और चित् यह दो पद है और 'कति' यह पुँल्लिंग इकारान्त सर्वनाम है और नित्य बहुवचनान्त है जैसे—प्रथमा और द्वितीयामें कति, तृतीयामें कतिभिः, चतुर्थी-पंचमीमें कतिभ्यः, षष्ठीमें कतीनाम्, सप्तमीमें कतिषु, और चित् यह अव्यय है।

२-नी (प्रापणे) इस धातुसे 'त्वा' यह प्रत्यय होकर अव्यय हो जाता है। अर्थात् इसको त्वाप्रत्ययान्त अव्यय कहते है।

३-इस विषयमें मल्लिनाथको छोडकर अन्यटीकाकार " प्रशमदिवसे " ऐसा पाठान्तर मानते हैं और आगेके चतुर्थ श्लोकमें " प्रत्यासन्ने नभसि " ऐसा पाठ मानते हैं, तहाँ आषाढके प्रशमदिवसे अर्थात् अन्तिमदिन और श्रावणमहीनेके प्रारम्भ ऐसा यक्षने सन्देश भेजा है ऐसा मानते है परन्तु मल्लिनाथके मतमें " आषाढस्य प्रथमदिवसे " यही पाठ योग्य है। और जिस मतमें आषाढके अनन्तर श्रावणके प्रारम्भ ऐसा अर्थ है तहाँ मासप्रत्यासत्ति होती है।

४-" तिर्य्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः " इति हलायुधः। अर्थात् तिरछेदांतकरके पर्वतमें टक्कर मारनेवाले हस्तीको परिणत कहते है।

तब अर्थात् आषाढकृष्णप्रतिपदाके दिन पर्वतके शिखरपर ठहरे हुए और पर्वतके तटपर दन्तप्रहार करनेवाले हस्तीकी समान दीखते हुए एक मेघको देखा ॥ २ ॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो–
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः–तस्य स्थित्वा कथम् अपि पुरः कौतुकाधानहेतोः अन्तर्बाष्पः चिरम् अनुचरः राजराजस्य दध्यौ मेघालोके भवति सुखिनः अपि अन्यथावृत्ति चेतः कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम् पुनः दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

अन्वयः–राजराजस्य[1] अनुचरः अन्तर्बाष्पः सन् कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि[2] स्थित्वा चिरम्[3] दध्यौ मेघालोके सति सुखिनः अपि चेतः अन्यथावृत्ति भवति कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे सति पुनः किम् ॥ ३ ॥

अर्थ–कुबेरका सेवक यक्ष नेत्रोंमें जल भरता हुआ अभिलाषकी उत्पत्ति करनेके हेतु उस मेघके आगे बडी कठिनतासे स्थित होकर बहुतकालपर्य्यन्त विचार करता रहा मेघके देखनेपर सुखी पुरुषका

१–यह शब्द ‘ राजन् ’ ऐसा नकारान्त है तिसका ‘ राजराज्ञः ’ ऐसा रूप होना चाहिये परन्तु (५ । ४ । ९१) इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार ‘ अ ’ प्रत्यय होकर अकारान्त होनेके कारण ‘ राजराजस्य ’ ऐसा हो गया । “ राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः ” इति विश्वः ।

२–‘ कथमपि ’ इसमें ‘ कथम् ’ और ‘ अपि ’ यह दो पद हैं और दोनों अव्यय हैं । जहां ज्ञान, हेतु और विवक्षा यह अर्थ होते हैं तहां ‘ अपि कथम् ’ ऐसा रूप होता है । और जहां यत्न, गौरव और निश्चय यह अर्थ होते हैं तहां ‘ कथमपि ’ ऐसा रूप होता है । यहां यह अव्यय यत्नार्थक है ।

३–‘ चिरम् दध्यौ ’ यहां ‘ मनोविकारोपशमनपर्यन्तम् ’ ऐसा शेषपद मानना चाहिये बहुत देरपर्यन्त विचार करता रहा अर्थात् उस समय स्त्रीके वियोगके कारण उत्पन्न हुए विकारके शान्त होने पर्य्यन्त विचार करता रहा ऐसा तात्पर्य है ।

भी मन विकारको प्राप्त हो जाता है गलेसे आलिङ्गन करनेवाले प्रिय जनके दूर होनेपर क्या कहना है ॥ ३ ॥

भावार्थः—कुबेरका अनुचर वह यक्ष स्त्रीके वियोगसे नेत्रोंमेंसे निकलते हुए अश्रुप्रवाहको रोककर, प्रियाके समाचार मिलनेकी खुशी के उत्पन्न होनेका कारण ऐसे उस मेघके आगे अतिप्रयत्न कुछ देर खडा होकर अर्थात् मनका विकार शान्त होनेपर्यन्त विचार करता रहा क्योंकि मेघका दर्शन होनेपर प्रियासहित सुख भोगनेवाले पुरुषकाभी मन विकृत हो जाता है फिर गलेसे आलिङ्गन करनेवाली जिसकी प्यारी स्त्री दूरहो उसकी क्या अवस्था होगी ? ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

१—इस श्लोकमें "अर्थान्तरन्यास" नामक अलंकार है जहां एक विषयका वर्णन करते करते उसकी सिद्धिके अर्थ द्वितीय विषयका वर्णन करा जाता है तहां अथान्तरन्यास होता है.पूर्वार्द्धमें यक्ष मेघके आगे खडा होकर बहुत देरपर्यन्त विचार करता रहा इस विषयका वर्णन किया और उत्तरार्द्धमे पूर्व कहे हुए विषयकी सिद्धिके अर्थ मेघदर्शनसे कामी पुरुषोंकी कैसी दशा होती है इस विषयका वर्णन करा है इस कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार हो गया ।

२—इसके स्थानमें रामनाथ टीकाकार "मनसि" ऐसा पाठ मानते है यहां "मनसि प्रत्यासन्ने सति" इसका अथ—मनके स्वस्थ होनेपर ऐसा होता है।

३—अन्य पुस्तकोंमें "दयिताजीवितालम्बनार्थम्" ऐसा पाठ है इसका अर्थ— स्त्रीके प्राणोंका आलम्बन करनेको ऐसा होता है ऐसा पाठ रखनेपर "हारयिष्यन्" इसको क्रियाविशेषण मानना चाहये । किसी पुस्तकमें "दयिताजीवितालम्बनार्थाम्" ऐसा पाठ है तहां "दयिताजीवितालम्बनार्थाम्" इसको "प्रवृत्तिम्" इसका विशेषण करना चाहिये । "दयितायाः जीवितस्य आलम्बनम् अथः यस्याः सा दयिताजीविता- लम्बनार्था ताम् दयिताजीवितालम्बनार्थाम्" प्रियाके प्राण बचनेको आश्रय लेना है जिसकी ऐसी प्रवृत्तिको यह अर्थ करना चाहिये ।

४—किसी पुस्तकमें "हारयिष्यन्" इसके स्थानमें "पाययिष्यन्" ऐसा पाठभेद है और किसी पुस्तकमें "प्रापयिष्यन्" ऐसा पाठभेद है ।

पदच्छेदः-प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताल्म्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीम् हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् सः प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनम् स्वागतम् व्याजहार ॥ ४ ॥

अन्वयः-सः नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताल्म्बनार्थी सन् जीमूतेन स्वकुशलमयीम् प्रवृत्तिम् हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतिप्रमुखवचनम् स्वागतम् प्रीतः व्याजहार ॥ ४ ॥

अर्थः-वह यक्ष श्रावणमासके समीप होनेपर स्त्रीके जीवनके आलम्बनकी प्रार्थना करता हुआ मेघके द्वारा अपने कुशल करके युक्त वार्त्ताको पहुँचाता हुआ नवीन कुटजके पुष्पों करके करी है पूजा जिसकी ऐसे उस मेघके अर्थ प्रीतियुक्त है वचन जिसमें ऐसे स्वागतको प्रसन्न होकर कहता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थः-वह यक्ष (आषाढका महीना बीतकर) श्रावणमास आवेगा ऐसा विचारकर विरहसे पीडित जो अपनी स्त्री उसके प्राण बचानेके लिये मेघके हाथ अपना कुशल क्षेम उसके पास भेजना चाहिये ऐसे विचार कर कुटजके नये पुष्पोंसे जिसका पूजन किया है ऐसे उस मेघसे प्रसन्न होकर भाषण, करने लगा ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥

१-यह शब्द ' जीवन ' और ' मूत ' इन दो शब्दोंसे बना है इस कारण " जीवनमूत " ऐसा शब्द होना चाहिये परन्तु " पृषोदरादि " गणमें इस सूत्रका पाठ मानकर " वन " का लोप होजाता है " जीमूतेन " यह प्रयोज्य कर्ता है। वस्तुतः यह द्वितीया विभक्ति होनी चाहिये क्योंकि वास्तवमें यह कर्म है इस कारण " जीमूतम् " ऐसा होना चाहिये । परन्तु (१-४-५३) इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार कर्मसंज्ञा विकल्प करके होती है इस कारण पक्षमें तृतीया हो गई है । " मूतोऽस्त्री पटबन्धेऽपि " ऐसा रुद्रकोश है परन्तु इसके स्थानमें मल्लिनाथने " मूतः स्यात्पटबन्धेऽपि " ऐसा पाठभेद लिखा है ।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

पदच्छेदः–धूमज्योतिः-सलिलमरुताम् सन्निपातः क मेघः : सन्देशार्थाः क पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तम् ययाचे कामार्ताः हि प्रकृतिकृपणाः चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

अन्वयः–धूमज्योतिः सलिलमरुताम् सन्निपातः मेघः क पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः संदेशार्थाः क इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तम् ययाचे हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति) ॥ ५ ॥

अर्थः–धूम तेज जल और वायुका समूहरूप मेघ कहाँ और समर्थ इन्द्रियवाले मनुष्यों करके पहुँचाने योग्य सन्देशरूप कार्य कहाँ इस प्रकार उत्कण्ठासे विचार न करता हुआ यक्ष उस मेघके प्रति याचना करता हुआ। कामदेवसे पीडित पुरुष सजीव और निर्जीवोंके विषय स्वभावसेही विचारशून्य (होते हैं) ॥ ५ ॥

भावार्थः–धुआँ, तेज, पानी और वायु इनका समूह अर्थात् इनसे बना हुवा अचेतन मेघ कहाँ ? और चतुर पुरुषों करके ले जाने योग्य सन्देश कहाँ ? अर्थात् जड मेघ सन्देशा किस प्रकार ले जायगा यह विचार स्त्रीके मिलनेमें अत्यन्त उत्कण्ठा करनेवाले उस यक्षके चित्तमें बिलकुल नहीं आया, और उस मेघकी विनती करने लगा यह वार्ता योग्य ही है क्योंकि कामपीडित पुरुष सजीव निर्जीवके विषयमें स्वभावसेही बिलकुल विचारशून्य हो जाते हैं अर्थात् कामपीडित पुरुषको सजीव और निर्जीव दोनोंही एकसे होते हैं ॥ ५ ॥

१–किसी पुस्तकमें " प्रणयकृपणाः " ऐसा पाठ है तहां प्रेमके कारण दीन ऐसा अर्थ करना चाहिये।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां ।
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं ।
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—जातम् वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम् जानामि त्वाम् प्रकृतिपुरुषम् कामरूपम् मघोनः तेन अर्थित्वम् त्वयि विधिवशात् दूरबन्धुः गतः अहम् याच्ञा मोघा वरम् अधिगुणे न अधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे (मेघ !) त्वाम् भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम् वंशे जातम् कामरूपम् मघोनः प्रकृतिपुरुषम् जानामि तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहम्

१—इस श्लोकमें पहले तीन चरणोंमें मेघ और सन्देशा इन दोनो विरूप पदार्थोंकी घटना करी है अर्थात् अचेतन जो मेघ वह वास्तवमें सन्देश ले जाने योग्य नहीं है और सन्देश चतुर मनुष्यके द्वारा भेजा नहीं है । यह विरुद्ध घटना है अर्थात् ले जानेमें असमर्थ मेघके द्वारा सन्देशा भेजनेका वर्णन करा है इस कारण यहां विषमालंकार होता है । " विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यस्योत्पत्तिर्यत्र,नर्थस्य वा भवेत् । विरूपघटना चासौ विषमालङ्कृति-स्त्रिधा॥ " इस प्रमाणके अनुसार यहां विषमालंकार है और चौथे चरणमे अर्थान्तर नामक अलंकारसे अनुप्राणित हो गया है ।

२—जिस पुस्तकमे " मोघा " के स्थानमे " वन्ध्या " ऐसा पाठ है तहांभी ' निष्फल ' ऐसाही अर्थ होता है ।

३—' पुष्करम् आवर्तयन्ति ते पुष्करावर्तकाः ' इस प्रकार पुष्करावर्तपदकी व्याख्या-अन्यत्र देखनेमें आती है और—

" पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः । संयोगाद्वायुनोच्छिन्नाः पर्वतानां महौजसाम् ॥
पुष्करा नाम ते मेघा बृहतस्तोयमत्सराः । पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥ "

इस प्रकार विष्णुपुराणका वचन है इससे " पुष्करावर्तक " इतना इकट्ठा एक नाम प्रतीत होता है परन्तु मल्लिनाथसूरी " पुष्कराश्च आवर्तकाश्च " ऐसा कहते है इससे यह प्रतीत होता है कि पुष्कर और आवर्तक यह दो नाम हैं ।

४—इस पदमें विधि और वश यह दो शब्द है विधि नाम प्रारब्ध है—

" विधिर्विधाने दैवेऽपि " इत्यमरः ।

वश पदका अर्थ अधीन है—" वशमिच्छाप्रभेदयोः " इति विश्वः ।

त्वयि अर्थित्वम् गतः अस्मि अधिगुणे याच्ञा मोघा अपि वरम् अधमे लब्ध-कामा अपि न ॥ ६ ॥

अर्थः–हे मेघ ! तुझको त्रिलोकीमें प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक मेघोंके वंशमें उत्पन्न होनेवाला इच्छाके अनुसार है रूप जिसका ऐसा इन्द्रका प्रधान पुरुष जानता हूँ तिससे प्रारब्धवश दूर हो गयाहै स्त्रीरूप सहायक जन जिसका ऐसा मैं तेरे विषय याचकपनेको प्राप्त हुआ हूँ । (क्योंकि) विशेष गुणवान् मनुष्यके विषय याचना निष्फलभी कुछ अच्छी होती है । और नीच पुरुषके विषय पूर्ण हुई है इच्छा जिसकी ऐसीभी (याचना) श्रेष्ठ नहीं ॥ ६ ॥

भावार्थः–हे मेघ ! पुष्कर और आवर्तक मेघोंका जो संसारमें प्रसिद्ध कुल है उसमें तेरा जन्म हुआ है, और तू अपनी इच्छाके अनुसार देह धारण करनेवाला है, इन्द्रका श्रेष्ठ दूत है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू कुलीन है और बडे पुरुषका आश्रित है. और मैं प्रारब्धके योगसे स्त्रीके विरहके दुःखमें पडा हूँ इस कारण तुझसे मैं याचना करता हूं । कारण यह है कि गुणवान् पुरुषसे याचना निष्फल हो तौभी श्रेष्ठ है, और नीच पुरुषके समीप याचना करना सफल होय तौभी श्रेष्ठ नहीं ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य[1] ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

पदच्छेदः–संतप्तानाम् त्वम् असि शरणम् तत् पयोद प्रियायाः सन्देशम् मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य गंतव्या ते वसतिः अलका नाम यक्षेश्वराणाम् बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

१–“ धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ” इस पाठके स्थानमें किसी २ पुस्तकमें “ धनपतेः क्रोधविश्लेषितस्य ” ऐसे दो पदभी देखनेमें आते हैं परन्तु अर्थ एकही है ।

अन्वयः-हे पयोद ! त्वम् सन्तप्तानाम् शरणम्[1] असि तत् धनपतिक्रोध-विश्लेषितस्य मे सन्देशम् प्रियायाः[2] हर बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या[3][4] अलका नाम यक्षेश्वराणाम् वसतिः ते[5] गन्तव्या अस्ति ॥ ७ ॥

अर्थः-हे मेघ ! तू सन्तापको प्राप्त हुए पुरुषोंका रक्षा करनेवाला है तिस कारण कुबेरके क्रोधसे स्त्रीके विरहको प्राप्त हुए मेरे संन्देशको स्त्रीके प्रति पहुंचा । बाहरके बगीचेमें बैठे हुए शिवजीके शिरकी चांद-नीसे प्रकाशित हो रहे हैं महल जहांके ऐसी अलका नामवाली यक्ष-श्रेष्ठोंके निवासका स्थान तेरे गमन करनेके योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! तू संतप्त पुरुषोंके तापको दूर करनेवाला है, और कुबेरने क्रोधवश होकर मुझको शाप दे दिया है इस कारण मैं स्त्रीके विरहसे जल रहा हूं । इस कारण तू मेरा सन्देशा मेरी प्रियाके पास पहुंचा दे अर्थात् सन्देशा पहुँचाकर स्त्रीके और मेरे दोनोंके सन्तापको दूर कर, (यदि कहे कि इस कार्य्यके करनेको मुझे कहां जानाचाहिये, तेरी वह स्त्री कहां है, और उसकी पहिचान क्या है ? तो सुन) नगरके बाहेर बगीचेमें रहनेवाले श्रीशिवजी महाराजके मस्तकपर

१-" शरणं गृहरक्षित्रोः " इत्यमरः । धूपसे तपे हुओंकी जैसे तू जलकी वर्षा करके रक्षा करता है तैसेही परदेशसे अपने घरको जानेवाले पुरुषोंकीभी रक्षा करता है, अर्थात् मेघोंकी सजल घटाओंको देखकर उत्कण्ठित होकर परदेशी लोग शीघ्रही अपनी स्त्रियोंसे मिलते हैं और विरहदुःखसे छूट जाते हैं ।

२-" प्रियायाः " यह षष्ठयन्त रूप है तथापि यह षष्ठी सम्बन्ध सामान्यमें है इस कारण द्वितीया विभक्तिके ऐसा अर्थ होता है ।

३-यहां बहिष् शब्दसे यञ् प्रत्यय होकर टिलोप हुआ है तब बाह्य शब्द सिद्ध हुआ है ।

४-" हर्म्यादि धनिनां वासः " इत्यमरः । श्रीमान् लोगोंका स्थान हर्म्य कहाता है ।

५-" यह कर्मप्रत्ययका प्रयोग है इस कारण " त्वया अलका गन्तव्या " तुझ करके अलका जाने योग्य है ऐसा होना चाहिये परन्तु कर्मर्थों वैकल्पिकी षष्ठी हुई है अर्थात् (२-३-७१) इस पाणिनिसूत्रके अनुसार " तव गन्तव्या " ऐसा प्रयोग हो गया है ।

रहनेवाले चन्द्रमाकी किरणोसे जिसके रत्नजटित स्थान प्रकाशित हो रहे हों ऐसी जो कुबेरकी " अलका " नामक नगरी है तहां तुझको जाना चाहिये ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम्
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—त्वाम् आरूढम् पवनपदवीम् उद्गृहीतालकान्ताः प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसंत्यः कः सन्नद्धे विरहविधुराम् त्वयि उपेक्षेत जायाम् न स्यात् अन्यः अपि अहम् इव जनः यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

अन्वयः—पवनपदवीम् आरूढम् त्वाम् पथिकवनिताः[1] प्रत्ययात् आश्वसंत्यः उद्गृहीतालकान्ताः[2] प्रेक्षिष्यंते त्वयि सन्नद्धे विरहविधुराम् जायाम् कः उपेक्षेत अन्यः अपि यः जनः अहमिव पराधीनवृत्तिः न स्यात् ॥ ८ ॥

अर्थः—वायुकामार्ग जो आकाश तिसको गमन करनेवाले तुझको मार्गमें जानेवाले प्रवासी पुरुषोंकी स्त्रियें (पतिके आगमनके) विश्वाससे स्वांस लेती हुई और केशोंके अग्रभागको पकडकर सँभालती हुई देखेंगी । (क्योंकि) तेरे आकाशमें दीखनेपर विरहसे दुःखितस्त्रीको कौन उपेक्षित करेगा दूसराभी और कोई पुरुष मेरे समान पराधीन जीवनवाला नहीं होयगा ॥ ८ ॥

भावार्थः—आकाशमार्गसे तू गमन करेगा तो प्रवासी पुरुषोंकी स्त्रियें मुखके ऊपर आये हुए अपने केशोंको हटाकर हमारे पति शीघ्रही घर आ जायेंगे ऐसा मनमें धीरज धरकर तुझको देखेंगी

१—यह शब्द पथ शब्दसे ष्कन् प्रत्यय होकर बनता है ।

२—पतिके परदेश जानेपर वेणी न करे तथा भूषणोंका त्याग करदे ऐसा प्रोषितभर्तृका स्त्रीका धर्म शास्त्रमें कहा है । ऐसे धर्मका पालन करनेवाली पतिव्रता स्त्रियें अपने मुखपरसे केश उठाकर तुझको देखेंगी ।

(मेरे दर्शनसे उनके पति किस प्रकार आजायेंगे ? यदि ऐसा कहे तो) तेरा आकाशमें उदय होनेपर विरहव्यथित स्त्रीको कौन छोड सकेगा ? मेरी समान जो पराधीनवृत्ति नहीं होगा वह कदापि उपेक्षा नहीं करेगा ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वाम्
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः[1] ॥
गर्भाधानक्षण[2]परिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः–मन्दं मन्दम् नुदति पवनः च अनुकूलः यथा त्वाम् वामः च अयम् नदति मधुरम् चातकः ते सगन्धः गर्भाधानक्षणपरिचयात् नूनम् आबद्धमालाः सेविष्यन्ते नयनसुभगम् खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

अन्वयः–अनुकूलः पवनः त्वाम् मन्दं मन्दम्[3] यथा नुदति च अयम् सगन्धः[4]

१– किसी पुस्तकमें " चातकस्तोयगृध्नुः " ऐसा पाठ है इसका अर्थ–जलके ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाला । यह पाठ कल्याणमल्लके अभिमत है । किसी पुस्तकमें " सगन्धः " इसके स्थानमें " सगवः " ऐसाही पाठ है उसकाभी अर्थ ' साभिमान ऐसा होता है ।

२–किसी पुस्तकमें " क्षण " के स्थानमें " क्षम " ऐसा पाठ है भरत नामक टीकाकार इसही पाठको स्वीकार करके आगे लिखे हुए अनुसार— व्याख्या करते हैं––गर्भस्य आधानं गर्भाधानं गर्भाधाने क्षमः परिचयः यस्य सः गर्भाधानक्षमपरिचयः, तं गर्भाधानक्षमपरिचयम् । किसी पुस्तकमें " स्थिरपरिचयम् " ऐसा पाठ है ।

३–यहाँ ' मन्दम् ' इस शब्दको द्विरुक्ति करी सो वीप्सार्थक है । तहाँ ऐसा जानना चाहिये व्याप्तुमिच्छा वीप्सा अर्थात् व्याप्तके बोधन करानेकी इच्छाका नाम वीप्सा है ।

४–' गन्ध ' शब्द गर्वका वाचक है–" गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः " इति विश्वः ।

ते वामः चातकः मधुरम् नदति च गर्भाधानक्षणपरिचयात् खे आबद्ध-माला: बलाकाः नयनसुभगम् भवंतम् नूनम् सेविष्यंते ॥ ९ ॥

अर्थः—योग्य पवन तुझको हौले २ जैसा प्रेरणा करता है और यह गर्व करके युक्त तेरे वामभागमें रहनेवाला चातक मधुरशब्द करता है और गर्भकी उत्पत्तिके उत्सवके कारण आकाशमें बाँधी है पंक्तियें जिन्होंने ऐसी बकस्त्रियें नयनोंको प्रिय जो तिस तुझको अवश्य सेवन करेंगी ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जिस दिशाको तू जायगा उसी दिशाको हौले २ अनुकूल वायु चल रहा है और घमण्डी यह चातक पक्षी तेरे वामभागमें बैठा हुआ मधुर गान करके सन्तुष्ट कर रहा है (यह शुभसूचक दो शकुन तो हो रहे हैं और तीसरा आगे होगा सो कहते हैं) गर्भिणी होनेका समय आ गया ऐसा पूर्ववत् चित्तमें समझकर बगलियोंकी पंक्तियां आकाशमें तुझे मिलेंगी ॥ ९ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्
अव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ॥
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम्
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

पदच्छेदः—ताम् च अवश्यम् दिवसगणनातत्पराम् एकपत्नीम् अव्यापन्नाम् अविहतगतिः द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् आशाबन्धः कुसुमसदृशम् प्रायशः हि अङ्गनानाम् सद्यः पाति प्रणयि हृदयम् विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

१–कार्य्यके निमित्त जाते हुए पुरुषको शुभ और अशुभ शकुन कहकर ऐसा फल कहा है। " भारद्वाजमयूराणां चाषस्य नकुलस्य च।
एतेषां दर्शनं पुण्यं वामभागे विशेषतः ॥ "

२–मेघोका दर्शन होनेपर बगली आकाशमें ऊँची उडती है उस समय वह गर्भिणी होती है ऐसा प्राचीन कवियोंका मत है इस विषयमें कर्णोदय नामक ग्रन्थका यह वचन है—" गर्भं बलाका दधतेऽभ्रयोगान्नाके निबद्धावलयः समन्तात् "।

अन्वयः-हे मेघ ! त्वम् दिवसगणनातत्पराम् (अत एव) अव्यापन्नाम् एकपत्नीम् भ्रातृजायाम् ताम् अविहतगतिः सन् अवश्यम् द्रक्ष्यसि आशाबन्धः प्रणयि कुसुमसदृशम् विप्रयोगे सद्यः पाति अङ्गनानाम् हृदयम् प्रायशः रुणद्धि ॥ १० ॥

अर्थः-हे मेघ ! तू, दिनोंकी गणना करनेमें लगी हुई, (इसी कारण) जीती हुई, एक है पति जिसका ऐसी अर्थात् पतिव्रता भ्राता जो मैं तिसकी स्त्री ऐसी उसको निरन्तर गमन करनेवाला होकर अवश्य देखेगा। (क्योंकि) आशारूपी बन्धन प्रेमयुक्त पुष्पोंकी समान सुकुमार वियोगमें शीघ्रही टूटनेवाले स्त्रियोंके हृदयको रोक लेताहै ॥ १० ॥

भावार्थः-हे मेघ ! यदि तू शीघ्र जायगा तो "शापके दिन थोडे रह गये हैं इस प्रकार दिनोंको गिन गिनकर प्राण धारण करनेवाली" पतिव्रता भाईकी स्त्रीको तू अवश्य देखेगा, इस कारण तेरा जाना निष्फल नहीं होगा, वह तुझको अवश्य मिलेगी क्योंकि यद्यपि स्त्रियोंका हृदय प्रेमयुक्त, पुष्पोंकी समान अत्यन्त कोमल, और पतिका वियोग होनेपर उसी क्षण नाशको प्राप्त होनेवाला होता है परन्तु आशारूपी बन्धन उसको बांधे रहता है। अर्थात् उसको मेरे आनेकी आशा लग रही होगी इस कारण वह मृत्युको नहीं प्राप्त हुई होगी ॥ १० ॥

१-मेघ जलकी वर्षा करके सबका पालन करते हैं इस कारण मेघको लोकबन्धु कहते हैं यथा-" लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः । स्थैर्य्यं न चक्रुः " भा० स्क० १० इस कारण यक्षने मेघको भ्राता कहा और भ्राता कहनेका दूसरा कारण यहभी है कि यदि मेघ अपने चित्तमें यह शंका करे कि मैं परस्त्रीसे किस प्रकार भाषण करूंगा। इस कारण भ्राता कहा अर्थात् भावज जानकर निःशंक भाषण करनेमें कोई हानि नहीं है। इस प्रकार यक्षने ' भ्रातृजाया ' शब्दसे सूचित किया।

२-" हृदये जीविते चित्ते " इति शब्दार्णवः।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्याम्
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ॥
आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—कर्तुम् यत् च प्रभवति महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्याम् तत् श्रुत्वा ते श्रवणसुभगम् गर्जितं मानसोत्काः आकैलासात् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतः राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

अन्वयः—यत् महीम् उच्छिलीन्ध्राम (अतःएव) अवन्ध्याम् कर्तुम् प्रभवति तत् श्रवणसुभगम् गर्जितम् मानसोत्काः आकैलासात् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि भवतः आकैलासात् सहायाः सम्पत्स्यन्ते॥११॥

अर्थः—जो पृथ्वीको शिलींध्रयुक्त (इसी कारण) सफला करनेको समर्थ होता है उस कानोंको प्रिय ऐसे गर्जनके शब्दको सुनकर मानस सरोवरके विषय उत्कंठा करनेवाले मार्गमें भोजन करनेके योग्य हैं कम लोंकी दंडियोंके टुकडे जिनके ऐसे राजहंस आकाशके विषय तेरे कैलासपर्यन्त सहाय होंगे ॥ ११ ॥

१–किसी २ पुस्तकमें " उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् " ऐसा पाठ है। और मल्लिनाथ तथा सनातन इनके सिवाय दूसरे अनेक टीकाकारोंने इसी पाठको माना है। कल्याणमल्ल नामक टीकाकारने " उद्गताः शिलीन्ध्राः आतपत्राणि इव यस्यां ताम् उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् " उत्पन्न हुए है छत्रोंकी समान शिलीन्ध्र जिसमें ऐसी " कंदल्यां च शिलीन्ध्रा स्यात् " इति शब्दार्णवः। शिलीन्ध्रके उत्पन्न होनेसे आगेको धान्यकी उत्पत्ति अच्छी होती है ऐसा शकुन जाननेवाले कहते हैं सोई निमित्तनिदान नामक ग्रन्थमें लिखा है—" कालाभ्रयोमादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम् " इति।

२–हंसोंके रहनेका स्थान मानससरोवर कैलास पर्वतपर है तहां अतिशीत होनेपर राजहंसोंको रोग हो जाता है इस कारण वह आठ महीनेपर्यंत और जगह रहकर वर्षा कालमें अपने स्थानको जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है।

३–श्वेतवर्णके पक्षी हिमालयके आसपास रहते हैं इनके चरण और चोंच कालेसे होते हैं उनको हंस कहते हैं और जिनको राजहंस कहते हैं वह अत्यन्त श्वेत होते हैं इनके चरण और चोंच लाल होती है।

भावार्थः-यदि कहे कि मार्गमें मेरा साथी कौन होगा तहाँ कहते हैं। कन्दमूलफलादिको उत्पन्न कर पृथ्वीको सफल करनेमें समर्थ ऐसी तेरी गर्जनाको सुनकर मानससरोवरमें जानेकी इच्छा करनेवाले राजहंस मार्गमें कमलकी दंडियोंके टुकडोंकी कोंपलको भोजन करते हुए कैलासपर्य्यन्त तेरे साथ जायंगे ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु ॥
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः- आपृच्छस्व प्रियसखम् अमुम् तुङ्गम् आलिङ्ग्य शैलम् वन्द्यैः पुंसाम् रघुपतिपदैः अङ्कितम् मेखलासु काले काले भवति भवतः यस्य संयोगम् एत्य स्नेहव्यक्तिः चिरविरहजम् मुञ्चतः बाष्पम् उष्णम् ॥ १२ ॥

अन्वयः-प्रियसखम् तुङ्गम् पुंसाम् वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितम् अमुम् शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णम् बाष्पम् मुञ्चतः यस्य स्नेहव्यक्तिः भवति ॥ १२ ॥

अर्थः-प्रियमित्र ऊँचे और पुरुषोंके वन्दनीय रामचन्द्रके चरणोंके चिह्नोंसे किनारोंके विषय चिह्नित इस पर्वतको आलिङ्गन करके कुशल पूँछ प्रत्येक वर्षाकालमें तेरे संयोगको प्राप्त होकर बहुत कालके विरहसे उत्पन्न हुए गरम श्वासको छोडते हुए जिस चित्रकूटपर्वतके स्नेहकी प्रकटता होती है ॥ १२ ॥

भावार्थः-तेरा प्रियमित्र सम्पूर्ण संसारके वन्दनीय श्रीरामचन्द्रके चरणोंका स्पर्श होनेसे जिसके किनारे पवित्र हो रहे हैं ऐसे अति ऊँचे चित्रकूट पर्वतसे मित्रताके कारण और पवित्रताके कारण, तथा

१-इस श्लोकमें "आलिङ्ग्य" और "एत्य" यह दोनों पद ल्यबन्त अव्यय है ॥

२-यद्यपि 'प्रच्छ्' धातु द्विकर्मक और परस्मैपदी है तथापि आङ् उपसर्ग लगनेसे प्रच्छ धातुसे आत्मनेपद हो गया है।

३-बाष्प शब्दके अश्रु और भाप दो अर्थ हैं। "बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः" इति विश्वः।

अति ऊंचे होनेके कारण, आलिङ्गन कर कुशल पूँछ, प्रत्येक वर्षा-कालमें तेरी चित्रकूटसे भेंट होती है तब बहुत दिनोंके वियोगसे अति गरम श्वासोंको छोडनेसे उसका स्नेह प्रकट होता है ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम्[1][2]
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्ताऽसि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य[3] ॥ १३ ॥

पदच्छेदः–मार्गम् तावत् शृणु कथयतः त्वत्प्रयाणानुरूपम् सन्देशम् मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्[4] खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदम् न्यस्य गन्ता असि यत्र क्षीणः क्षीणः परिलघु[5] पयः स्रोतसाम् च उपभुज्य ॥ १३ ॥

अन्वयः–हे जलद तावत् कथयतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपम् मार्गम् शृणु तदनु श्रोत्रपेयम् मे सन्देशम् श्रोष्यसि यत्र खिन्नः खिन्नः सन् शिखरिषु पदम् न्यस्य क्षीणः क्षीणः सन् स्रोतसाम् परिलघु पयः उपभुज्य गन्ता असि ॥ १३ ॥

अर्थः–हे मेघ ! पहले कहते हुए (मुझसे) तेरे जानेके योग्य मार्गको सुन तदनन्तर कानोंसे पीने लायक मेरे सन्देशको सुनेगा जिस मार्गमें वारम्वार खिन्न खिन्न अर्थात् बलहीन होता हुआ पर्वतोंके

१–किसी पुस्तकमें " तत्प्रयाणानुरूपम् " ऐसा पाठ है, अर्थ तत् तिस कारण।

२–किसी पुस्तकमें " त्वत्प्रयाणानुकूलम् " ऐसा पाठ है अर्थ एकही है।

३–किसी पुस्तकमें " उपयुज्य " ऐसा पाठ है इसका अर्थ देकर।

४–श्रोत्रपेयम्–कानोंसे पान करनेयोग्य अर्थात् तृष्णापूर्वक सुनने योग्य।

५–परि–लघु जाड्यरूप दोषरहित अर्थात् हलके ऊँचे पर्वतसे नीचे गिरनेवाले बडे बडे पत्थरोंसे रगड खानेवाले नदियोंके जल हलके और पथ्य होते हैं इस विषय वाग्भटका प्रमाण है-

" उपलास्फालनक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः।
हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः ॥ "

पत्थरोंमे रगडे हुए, ऊंचेपरसे गिरे हुए, फटे टूटे इत्यादि प्रकारके है जल जिनमें ऐसी हिमालय और मलयाचलसे उत्पन्न होनेवाली नदियोंके जल पथ्य-कारक होते हैं।

विषय चरणको रखकर और वारम्वार दुर्बल होता हुआ नदियोंके अति हलके जलको पीकर गमन करेगा ॥ १३ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! (तुझको अलकावतीका सुखकारक सीधा मार्ग मालूम नहीं है इस कारण और चलनेके परिश्रमसे तू अत्यन्त बलहीन और दुर्बल होजायगा इस कारण) जिस मार्गमें थकनेके समय (बीचमें पडनेवाले) ऊँचे २ पर्वतोंपर विश्राम कर २ के तेरा गमन होगा, और दुर्बल होनेके समय, (उस मार्गमें बहनेवाली) नदियोंके पथ्यकारक जलको पान करके (आराम मिलेगा) ऐसा मार्ग पहले मुझको सुन और तदनन्तर केवल कानोंसे पीनेके योग्य अमृतसमान मेरे सन्देशेको सुन ॥ १३ ॥

अद्रेः शृंगं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धांगनाभिः ॥
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खम्
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः—अद्रेः शृङ्गम् हरति पवनः किम् स्वित् इति उन्मुखीभिः दृष्टोत्साहः चकितचकितम् मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः स्थानात् अस्मात् सरसनिचुलात् उत्पत उदङ्मुखः खम् दिङ्नागानाम् पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

अन्वयः—पवनः अद्रेः शृङ्गम् हरति किं स्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्ध

१--गोविन्दानन्द नामक टीकाकरने ' हरति ' के स्थानमें ' वहति ' पाठ मान उसका अर्थ--ले जाता है ऐसा होता है ।

२--मल्लिनाथको छोड अन्य टीकाकरोंकी अनेक पुस्तकोंमें ' दृष्टोच्छ्रायः ' ऐसा पाठ है । और भरतटीकाकारने ' दृष्टः उच्छ्रायः यस्य सः दृष्टोच्छ्रायः ' देखा है ऊंचापन जिसका ऐसा अर्थ किया है ।

३--किसी पुस्तकमें ' हस्तावलेहान् ' ऐसाभी पाठ है ।

४--यहां किम् और स्वित् ऐसे दो पद हैं किम् शब्दका अर्थ भेद है और स्वित् शब्दका अर्थ वितर्क है । " स्वित् प्रश्ने च वितर्के च तथैव पादपूरणे " ।

५-इति शब्द अव्यय है इसका अर्थ-हेतु, प्रकार, प्रकाश, समाप्ति इत्यादि है परन्तु यहां प्रकार अर्थ लिया जाता है " इति स्वरूपे सान्निध्ये विवक्षानियमेऽपि च । हेतौ प्रकार-प्रत्यक्षप्रकर्षेष्ववधारणे ॥ १ ॥ एवमर्थे समाप्तौ स्यात् " इति हैमः ।

सिद्धाङ्गनाभिः चकितचकितम् दृष्टोत्साहः सरसनिचुलात् अस्मात् स्थानात् पथि दिङ्नागानाम् स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः सन् खम् उत्पत ॥१४॥

अर्थ–वायु पर्वतके शिखरको लिये जाता है क्या इस प्रकार ऊपरको मुख करनेवाली देवयोनिविशेष सिद्धोंकी मूढास्त्रियोंकरके चकित होकर देखा गया है उद्योग जिसका ऐसा (तू) रसीले वेंतोंसे युक्त इस स्थानसे आकाशमार्गमें दिशाओंके हस्तियोंकी मोटी शुंडोंके घमण्डोंको दूर करता हुआ उत्तरको मुख करके उडकर जा ॥ १४ ॥

भावार्थः–जहां रसभरे वेंत उग रहे हैं ऐसे इस रामगिरिपर्वतसे

१–निचुल वेंतका नाम है और एक कविकाभी नाम है " वानीरे कविभेदः स्यान्निचुलः स्थलवेतसे " इति शब्दार्णवः। कविपक्षमें 'सरसनिचुल' अर्थात् रसिक जो निचुल कवि ऐसा अर्थ होता है।

२–आठों दिशाओंकी रक्षा करनेके निमित्त ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक यह प्रत्येक दिशाके एक २ स्वामी है ऐसा पौराणिकोंका मत है परन्तु भागवत स्कन्ध ५ अध्याय १० में ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित चार दिग्गज है और ऐसेही दिक्पाल है ऐसा वर्णन है।

३–पुराणोंमे ऐसी कथा है कि दिग्गजोंके फूत्कार शब्दसे वायु उत्पन्न होता है और मेघोंको विदीर्ण करता है इस कारण इन दोनोंमें शत्रुता है।

४–निचुल कवि कालिदासका सहाध्यायी था. निचुल नाम इसका इस कारण पडा कि एक समय अपनी सहाध्यायी मण्डलीमें बैठे हुए–" संसर्गतो दोष गुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि । स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् " यह श्लोक बनाया यह इसके मित्रोंको अत्यन्त पसंद आया और इस श्लोकमें निचुलका वर्णन किया था इसण कारण इसका नाम 'निचुल' ही कहने लगे, जो कोई कालिदासकी कवितामें दूषण देता था उसका यह परिहार करता था और दिङ्नागाचार्य्य एक कवि कालिदाससे द्विसे करते थे वह सदा कालिदासको कवितामें दूषण देते थे इस विषयको लेकर इस श्लोकका दूसरा अर्थ करते है वह यह है।

अन्वयः–हे प्रबन्ध, सरसनिचुलात्, अस्मात्, स्थानात्, उदङ्मुखः सन्, पथि, दिङ्नागानाम्, स्थूलहस्तावलेपान्ः परिहरन्, अद्रेः, शृगम्, पवनः, हराति, किं स्वित ; इति, उन्मुखीभिः, मुग्धसिद्धांगनाभिः चकितचकितम् , दृष्टोत्साहः, सन्, खम्, उत्पत ॥ अर्थः–कालिदास अपने ग्रन्थसे कहते है कि हे प्रबन्ध ! रासिक निचुलकवि-

उत्तरकी ओर आकाशमें दिग्गजोंके स्थूल शुंडादण्डोंके घमण्डको अपने प्रचण्ड वेगसे दूर करता हुआ चला जा तुझको उडता हुआ देखकर सिद्धोंकी स्त्रियें यह क्या वायु पर्वतशिखरको उडाये लिये जाता है ऐसा चकित होकर देखती रहेंगी ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
¹वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ॥

-जहां रहता है ऐसे स्थानसे तू निर्दोष होकर अर्थात् निःशंक होकर सारस्वतमार्गमें दिङ्नागाचार्य्यके स्वहस्तसे दिखाय हुए दूषणोंका परिहार करता हुआ और पर्वतकी समान उस दिङ्नागाचार्य्यके महत्त्वको वायु उडाये लिये जाता है क्या इस प्रकार चकित होकर कहनेवाली स्त्रियों और कवियोंको देखता हुआ आकाशपर्य्यन्त जा अर्थात् श्रेष्ठ हो ।

१-' वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ' इसका अर्थ हमने मल्लिनाथके टीकाके अनुसार लिखा है, परन्तु मल्लिनाथकी व्याख्याकी अपेक्षा सनातन टीकाकारकी व्याख्या युक्तियुक्त प्रतीत होती है सब टीकाकारोंने इसकी जो व्याख्या लिखी है सो दिखाते हैं-मल्लिनाथने जो अर्थ किया है सो ऊपर दिखला दिया परन्तु बमईसे इन्द्रधनुषका उत्पन्न होना कदापि सम्भव नहीं है और बमईसे इन्द्रधनुषकी उत्पत्ति होनेमें मल्लिनाथने कोई युक्ति भी नहीं लिखी है। भरतनामक टीकाकार-यह कहते हैं कि पातालमें वासुकी सर्पके फणोंके रत्नोंकी कान्ति बमईके मार्गसे निकलकर आकाशमें प्रतिबिम्बित होती है वह इन्द्रधनुषके समान दीखती है यह शास्त्रान्तरका मत है । परन्तु उस शास्त्रका नाम भरतमल्लने नहीं लिखा और इस रीतिकी कल्पनाभी असम्भवनीय और विचित्र है । और सनातननामक टीकाकार- " वामलूरे गिरेः श्रृगे वल्मीकपदमिष्यते " इति शब्दार्णवः । यह प्रमाण देकर ' वल्मीक ' शब्दका चित्रकूटपर्वत और ' अग्र ' शब्दका शिखर अर्थ करके ' वल्मीकाग्रात् इसका चित्रकूटपर्वतके शिखरसे ऐसा अर्थ करते हैं । और रामनाथनामक टीकाकार " वल्मीकः सातपो मेघो वल्मीकः सूर्य्य इष्यते "-इस प्रकार कोशान्तरका प्रणाम देकर ' वल्मीकाग्रात् ' इसका अर्थ-विनिमयको प्राप्त होनेवाली सूर्य्यकी किरणोंसे-ऐसा अर्थ करते हैं जलसे मिली हुई सूर्य्यकी किरणें इन्द्रके धनुषके आकारकी हो जाती हैं इस विषयमें ज्योतिःशास्त्रका प्रमाण है-" सूर्य्यस्य विविधा वर्णाः पवनेन विघट्टिताः । बिहायसि धनुःसंस्था दृश्यन्ते जलदागमे ॥ " इन सब प्रकारके अर्थोंमें विद्वानोंने सनातनटीकाकारके अर्थको सर्वोपरि माना है ॥

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः—रत्नच्छायाव्यतिकरः इव प्रेक्ष्यम् एतत् पुरस्तात्, वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डम् आखण्डलस्य येन श्यामम् वपुः अतितराम् कान्तिम् आपत्स्यते ते बर्हेण इव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

अन्वयः—वल्मीकाग्रात् रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् एतत् आखण्डलस्य धनुःखण्डम् पुरस्तात् प्रभवति येन ते श्यामम् वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोप-वेषस्य तस्य विष्णोः इव अतितराम् कान्तिम् आपत्स्यते ॥ १५ ॥

अर्थः—बमईके अग्रभागसे रत्नोंकी कान्तिके समूहकी समान देखने योग्य यह इन्द्रके धनुषका टुकडा आगे उत्पन्न होता है जिससे तेरा श्याम शरीर प्रकाशमान कान्तिवाले मयूरपुच्छसे गोपका वेष धारण करनेवाले तिन विष्णु भगवान्की समान अतिकान्तिको प्राप्त होगा ॥ १५ ॥

भावार्थः—(पातालमें नागोंके मस्तकके विषय) नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिके मेलकी समान, बमईसे उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिके समूहकी समान दीखते हुए इन्द्रधनुषका टुकडा तेरे अग्रभागमें दीखेगा तिस संयोगसे तेरा श्याम शरीर जिस प्रकार गोपालका वेष धारण करनेवाले विष्णु भगवान्का अर्थात् श्रीकृष्णका श्याम शरीर जिस प्रकार मयूरपिच्छसे शोभाको प्राप्त होता है तिस प्रकार शोभित होगा ॥ १५ ॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः[1]
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालम्
किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण[2] ॥ १६ ॥

१-किसी २ पुस्तकमें ' भ्रूविकारानभिज्ञैः ' ऐसा पाठ है ।

२-इस चरणमें ' किंचित्पश्चात्प्रबलय गतिं भूय एवोत्तरेण ' ऐसा पाठान्तर है ।

पदच्छेदः-त्वयि आयत्तम् कृषिफलम् इति भ्रूविलासानभिज्ञैः प्रीतिस्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रम् आरुह्य मालम् किञ्चित् पश्चात् व्रज लघुगतिः भूयः एव उत्तरेण ॥ १६ ॥

अन्वयः-कृषिफलम् त्वयि आयत्तम् इति प्रीतिस्निग्धैः भ्रूविलासानभिज्ञैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः सद्यः सीरोत्कषणसुरभि मालम् क्षेत्रम् आरुह्य किञ्चित् पश्चात् व्रज भूयः लघुगतिः उत्तरेणैव (व्रज) ॥ १६ ॥

अर्थः-खेतीका फल तेरे अधीन है इस कारण अकृत्रिम स्नेहसे भीजे हुए भौंके चलानेकी चतुरताहीन देशकी स्त्रियोंके नेत्रोंकरके पान किया हुवा शीघ्रही हलोंसे जुती है इस कारण सुगन्धित है ऊँची भूमि जिसकी ऐसे खेतको वर्षा करके कुछ पीछेसे गमन कर कर फिर शीघ्रकी चालसे उत्तरके मार्ग करकै जा ॥ १६ ॥

भावार्थः-खेतोंको जोतनेके अनन्तर अन्नोत्पन्न करना तेरे अधीन है और किसानोंकी स्त्रियें प्रेमयुक्त नेत्रोंसे आदरपूर्वक देखेंगी तब तू जुते हुए खेतोंमें वर्षा करता हुआ आगेको कुछ जाकर फिर उत्तरके मार्गसे जाना ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥

१-यहां खेतीका फल कहां रहता है इस आधारकी इच्छा होती है इस कारण ' त्वयि ' यह सप्तमी ली है नहीं तो ' तवायत्तम् ' ऐसा होता ।

२-" मालमुन्नतभूतलम् "-ऊंची पृथ्वीका नाम माल है यह उत्पलकोशका प्रमाण है ।

३-" लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् " लघु, क्षिप्रं, अरं, द्रुतं यह शीघ्रताके नाम हैं ।

४-स्त्री और याचकोंके मनोरथको विना पूर्ण करे जाना नहीं चाहिये यदि चला जाय तो विघ्न होता है इस प्रकार शास्त्रोंका सिद्धान्त है ऐसा कविका अभिप्राय है ।

५-आम्रकूटपर्वतको आजकल ' अमरकंटक ' नामसे कहते हैं । यह पर्वत विन्ध्याचल पर्वतसे ऐशान्य कोणमें है ।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय ।
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः–ताम् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति अध्वश्रमपरिगतम् सानुमान् आम्रकूटः न क्षुद्रः अपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम् पुनः यः तथा उच्चैः ॥ १७ ॥

अन्वयः–आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतम् त्वाम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति क्षुद्रः अपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते सति प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखः न भवति यः तथा उच्चैः (सः अभिमुखः) पुनः किम् (वक्तव्यम्) ॥ १७ ॥

अर्थः–आम्रकूट पर्वत धारावृष्टिसे शान्त किया है वनदावाग्नि जिसने ऐसे मार्गके परिश्रमसे युक्त तुझको भली प्रकार मस्तक करके उठावेगा (क्योंकि) कृपणभी आश्रयके निमित्त मित्रके प्राप्त होनेपर पूर्व उपकारोंकी अपेक्षा करके विमुख नहीं होता है (और जो आम्रकूटसरीखा उन्नत है (वह सम्मुख होय) फिर क्या कहना है ॥ १७ ॥

१–इस श्लोकके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें यह श्लोक ही लिखा ह–

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूटः
तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः ॥
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निम्
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥

अन्वयः–हे जलद ! सानुमान्, आम्रकूटः, अध्वक्लान्तम्, प्रतिमुखगतम्, त्वाम्, तुंगेन, शिरसा, श्लाघमानः, सन्, वक्ष्यति, त्वम्–अपि, तस्य, नैदाघम्, अग्निम्, आसारेण, शमयेः, सद्भावार्द्रः, उपकारः, महत्सु, चिरेण, न, फलति ॥

अर्थः–हे मेघ ! वह अतिऊँचा आम्रकूटपवत मार्गमें थके हुए सन्मुख प्राप्त हुए तुझको अतिऊंचे मस्तक करके तेरी प्रशंसा करता हुआ उठायेगा तूभी उसके उष्णकालसम्बन्धी दावानल अग्निका धारापातस शान्त करना निष्कपटपनेसे किया हुआ उपकार देरसे नहीं फलता है किन्तु शीघ्र फलीभूत होता है ॥

भावार्थः-जिसके शिखर अत्यन्त ऊँचे हैं, जिसके वनकी दावानल अग्निको तू अपनी धारावृष्टिसे बुझावेगा ऐसा जो आम्रकूट पर्वत है सो मार्गमें थककर आये हुए तुझको अपने शिखरपर धारण करेगा क्योंकि सहारा लेनेके निमित्त आये हुए मित्रको कृपणपुरुषभी देखकर और पूर्वक उसके उपकारोंको स्मरण करके उससे विमुख नहीं होता है और आम्रकूटसरीखा तुमको आश्रय देगा इसमें तो कहनाही क्या है ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः-छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः त्वयि आरूढे शिखरम् अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे नूनम् यास्यति अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् मध्ये श्यामः स्तनः इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

अन्वयः-परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे सति मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवः स्तनः इव अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् नूनं यास्यति ॥ १८ ॥

अर्थ-पके हुए फलोंसे प्रकाशमान वनमें उत्पन्न होनेवाले आम्रक वृक्षोंकरके आच्छादित हैं समीपके भाग जिसके ऐसा आम्रकूटनामक पर्वत चिकने केशपाशकी समान रूपवाले तेरे शिखरके प्रति चढनेपर मध्यभागमें श्यामवर्ण और शेष विस्तारमें श्वेतवर्ण पृथ्वीके

१-किसी पुस्तकमें " ज्योतिभिः " ऐसा पाठ है--पके हुए फलोंसे स्पष्ट है दर्शन जिसका ऐसे ।

२-वनमें अनेक आमके वृक्ष अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं, वनमें आषाढके महीनेमें फल आते हैं, और वर्षाके जलसे वह आमफल पक जाते हैं ऐसी प्रसिद्धि है ॥

३-यहां जो " तेरे शिखरपर चढनपर " ऐसा कहा है इससे यह ध्वनि होतो है कि विलास करके श्रमको प्राप्त हुआ कामी पुरुष कामिनीके स्तनकलशोंपर विश्राम करता है तैसेही, तू पृथ्वीरूप नायिकाके आम्रकूटरूप स्तनपर विश्राम करेगा ।

स्तनकी समान देवताओंके स्त्रीपुरुषरूप जोडोंके देखनेकी अवस्थाको निश्चय करके प्राप्त होगा ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! पके हुए फलोंसे शोभायमान जंगली आमोंके झाडोंसे ढका हुआ जो आम्रकूटपर्वत उस शिखरोंपर तैलसे चिकने हुए केशपाशके समान वर्णवाला तू जब चढेगा तब आम्रकूट पृथ्वीके स्तनकी समान मध्यभागमें काला और चारों ओर श्वेतवर्ण दीखेगा और स्त्रियोंके साथ फिरते हुए देवताओंके देखनेके योग्य रम्य होगा ॥ १८ ॥

स्थित्वा तस्मिन्वनेचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तम्
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम्
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ १९ ॥

पदच्छेदः—स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तम् तोयोत्सर्गद्रुततर-गतिः तत्परम् वर्त्म तीर्णः रेवाम् द्रक्ष्यसि उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् भक्तिच्छेदैः इव विरचिताम् भूतिं अङ्गे गजस्य ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मेघ ! वनचरवधूभुक्तकुञ्जे तस्मिन् मुहूर्तम् स्थित्वा तोयोत्सर्ग-

१–इस श्लोकमे पृथ्वीको स्त्री कल्पना करके पर्वतको स्तन कल्पना किया है ।

२–"वनचर" इस पदमें वन और चर इन दो पदका समास हुआ है तहां (६–३–१४) इस पाणिनीय सूत्रके प्रमाणसे 'वनेचरः' और 'वनचरः दोनों बनते हैं ।

३–किसी पुस्तकमें 'मुक्तकुंजे' ऐसा पाठ है तहां—वनचरोंकी स्त्रियोंने उपभोग करके छोड दी हैं कुंजें जिसकी ऐसे पर्वतपर ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

४–भरतआदि टीकाकारोंने "तोयोत्सर्गात् द्रुततरगतिः" ऐसा भिन्नपदका पाठ लिया है । और हरिगोविंद टीकाकारने "तोयोत्सर्गाल्लघुतरगतिः" ऐसा पाठ लिया है. अर्थ-जलका त्याग करनेसे लघुतर कहिये अत्यन्त शीघ्रताकी है गति जिसकी ।

५–कालके अलग २ अनेक नाम हैं तिनमें 'मुहूर्त' दो घडीका नाम है, तथापि "मुहूर्तमल्पकाले स्याद् घटिकाद्वितयेऽपि च"—इति शब्दार्णवः । इस प्रमाणसे अल्पकाल अर्थ ग्रहण करा है । ऐसा अर्थ करनेका कारण यह है कि यदि तहां अधिक समय वास करेगा तो कार्यमें हानि होगी ।

द्रुततरगतिः सन् तत्परम् वर्त्म तीर्णः उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् द्रक्ष्यसि गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भूतिमिव ॥ १९ ॥

अर्थ-हे मेघ ! वनचरोंकी स्त्रियोंने किये हैं भोग जिसमें ऐसे हैं लतागृह जिसमें ऐसे तिस आम्रकूटके विषय मुहूर्तमात्र स्थिति करके जलके त्याग देनेसे शीघ्र गमन करता हुआ तिस आम्रकूटपर्वतसे आगे मार्गको अतिक्रमण करनेवाला तू पाषाणोंसे विषम अर्थात् ऊँचे नीचे विन्ध्याचलके समीपके पर्वतके विषय छिन्नभिन्न होनेवाली रेवा-नदीको देखेगा (किसकी समान) हस्तीके अङ्गमें रचनाके भागोंसे बनाई हुई शृंगारको जैसे ॥ १९ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! जिसके लतागृहोंमें वनवासी पुरुषोंकी स्त्रियें क्रीडा करती हैं, उस आम्रकूट पर्वतपर क्षणमात्र विश्राम करके पहले करी हुई वर्षाके कारण तेरा शरीर हलका हो जायगा इस कारण तू अत्यन्त शीघ्र चलेगा, तब आगे कुछ मार्गको उल्लंघन करके विन्ध्याचलके प्रत्यन्त पर्वतके विषय खलबल शब्द करती हुई चारों ओरको वहनेवाली नर्मदा नदी बडे हस्तीके अंगमें शोभाको प्राप्त होनेवाली रचनाके समान चित्रविचित्र रंगोंकरके युक्त दीखेगी ॥ १९ ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

१-वृष्टि करनसे जलका भार कम हो जायगा इस कारण तू अतिशीघ्र चलेगा ।

२-" पादाः प्रत्यन्तपर्वताः " इत्यमरः ।

३-" भक्तिर्नियन्त्रणे भागे रचनायाम् "-इति शब्दार्णवः ।

४-" भूतिर्मातंगशृंगारे जातौ भस्मनि सम्पदि "—इति विश्वः ।

५-किसी पुस्तकमें ' जम्बूखण्ड ' ऐसा पाठ है, और किसी पुस्तकमें ' जम्बूषण्ड ' ऐसा पाठ है परन्तु अर्थ वही है ।

पच्छेदः—तस्याः तिक्तैः वनगजमदैः वासितम् वान्तवृष्टिः जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् तोयम् आदाय गच्छेः अन्तःसारम् घन तुलयितुम् न अनिलः शक्ष्यति त्वाम् रिक्तः सर्वः भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

अन्वयः—हे घन ! वान्तवृष्टिः सन् तिक्तैः वनगजमदैः वासितम् जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् तस्याः तोयम् आदाय त्वम् गच्छेः अन्तःसारम् अनिलः तुलयितुम् न शक्ष्यति तथाहि रिक्तः सर्वः अपि लघुः भवति पूर्णता गौरवाय भवति ॥ २० ॥

अर्थः—हे मेघ ! त्याग दी है वृष्टि जिसने ऐसा होता हुआ सुगन्धयुक्त वनके हस्तियोंके मदोंकरके बसा हुआ जामुनकी कुञ्जोंसे टक्कर खानेवाला है वेग जिसका ऐसे उस रेवा नदीके जलको ग्रहण करके गमन कर भीतरी बलयुक्त तुझको वायु लेकर चलनेको नहीं समर्थ होगा (क्योंकि) निःसार (खाली) सबही हलका होता है और पूरापन गौरवको कारण होता है ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! वर्षा करके हलका हो जायेगा और वनके

१—यहां ' वनके हस्तियोंके मदसे वसे हुए नर्मदाके जल' ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हिमाचल विन्ध्याचल और मलयागिरि यह तीनों हस्तियोंके उत्पन्न होनेके मुख्य स्थान हैं यथा—" हिमवद्विन्ध्यमलया गजानां प्रभवा नगाः " ।

और नर्मदा नदीभी विन्ध्याचलपरही बहती है, इस कारण तहांके हस्तियोंके मदके जलसे नर्मदाका जल वासित है ।

२—यद्यपि सामान्यतः एक प्रकारके रसका नाम ' तिक्त ' है, परन्तु यहां सुगन्धित ऐसा अर्थ लिया है क्योंकि, " तिक्तो रसे सुगन्धौ च"—इति विश्वः । इस कोशके प्रमाणसे सुगन्धित ऐसा अर्थभी है ।

३—इस श्लोकके पहले दोनों चरणोंमें ' तिक्तैः' ' वान्तवृष्टिः' और ' जंबूकुंज, इन तीनों पदोंसे ऐसा ध्वन्यर्थ निकलता है कि, पहले मनुष्यको वान्ति (कै) होनेसे कोठा साफ हो जाता है तब कफकी उत्पत्ति न हो इस कारण तिक्त क्वाथ दिये जाते हैं, तब कफकी उत्पत्ति न होनेसे वातके विकार नहीं होते है इस विषयमें वैद्यकशास्त्रका प्रमाणभी है—

" कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः ।
किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः ॥
कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः ।
वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिनः " ॥ वाग्भटः ।

हस्तियोंके सुगन्धियुक्त मदके जलसे वसे हुए और स्थान २ पै जम्बूकी कुञ्जोंसे जिसका वेग टक्कर खाता है ऐसे, अनायास पान करने योग्य नर्मदाके जलको पीकर जा. (इस प्रकार जलपान करके तू) भारी हो जायेगा तब तुझको वायु नहीं उडा सकेगा क्योंकि जो निःसार होता है उसमें सदा हलकापन रहता है और जो भरा हुआ होता है वह गौरवको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्[1] ॥
जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारंगास्ते[2] जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः–नीपम् दृष्ट्वा हरितकपिशम् केसरैः अर्द्धरूढैः आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च अनुकच्छम जग्ध्वा अरण्येषु अधिकसुरभिम् गन्धम् आघ्राय च उर्व्याः सारंगाः ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

अन्वयः–सारंगाः अर्द्धरूढैः केसरैः हरितकापिशम् नीपम् दृष्ट्वा च अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः जग्ध्वा[3] अरण्येषु अधिकसुरभिम् उर्व्याः गन्धम् आघ्राय जललवमुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति ॥ २१ ॥

अर्थः–हस्ति हिरन भ्रमर और चातक आधे उगे हुए केसरोंसे हरित और कपिश वर्ण कदमके वृक्षोंको देखकर और किनारेके विषय प्रकट हुई हैं प्रथम पुष्पोंकी कलियें जिनकी ऐसी कदलियोंको खाकर वनोंको विषय अत्यन्त वसे हुए पृथ्वीके गन्धको सूँघकर जलकी वर्षा करनेवाले तेरे मार्गको जतावेंगे ॥ २१ ॥

१–" द्रोणपर्णी स्निग्धगन्धा कन्दली भूकदल्यपि " इति शब्दार्णवः ।

२–" सारंगश्चातके भृंगे कुरंगे च मतंगजे " इति विश्वः ।

३–यहां मूलभूत धातु ' अद् ' है और इसका अर्थ भक्षण करना है, (२ । ४ । ३६) इस पाणिनीय सूत्रानुसार ' अद् ' धातुके स्थानमें जग्धि आदेश होकर ' क्त्वा ' प्रत्यय होनेसे , जग्ध्वा ' ऐसा रूप सिद्ध हो गया है ।

भावार्थः—आधे उत्पन्न होनेके कारण जिनका वर्ण कहीं हरा कहीं पिशंग हो रहा है ऐसे कदम्बके वृक्षोंको देखकर और नर्मदाके किनारे २ प्रथम जिसके फूल आये हैं ऐसी कदलियोंको भक्षण करके और वनकी पृथ्वीकी वसी हुई सुगन्धिको सूँघकर हरिण और हस्ती आदि तेरे मार्गको जतावेंगे अर्थात् कदम्बके वृक्ष फूले हुए हैं कदलीमें फल आ गये हैं और पृथ्वीमें सुगन्ध आने लगा ऐसा जानकर मेघ वर्षा करता हुआ इधरको गया है ऐसा जानेंगे ॥ २१ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥

पदच्छेदः—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तः बलाकाः त्वाम् आसाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥

अन्वयः—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः च श्रेणीभूताः

१—किसी २ पुस्तकमें इस श्लोकको प्रक्षिप्त मानकर इसकी टीका अनेक टीकाकारोंने नहीं की है परन्तु मल्लिनाथ तथा अन्य पांच टीकाकारोंने इस श्लोककी व्याख्या करी है।

२—किसी किसी २ पुस्तकमें " अम्भोबिन्दुग्रहणरभसान् " ऐसा पाठ है। अर्थ—जलकी बूंद ग्रहण करनेमें है शीघ्रता जिनको ऐसे उन चातकोंको।

३—किसी पुस्तकमें " सोत्कम्पानि " ऐसा पाठ है। अर्थ—भयसे अत्यन्त कम्पयुक्त।

४—यहां " वर्षामें वरसे हुए जलको शीघ्रतासे ग्रहण करनेमें चतुर " ऐसा कहा है इसका यह कारण है कि " सर्वसहापतितमम्बु न चातकस्य हितम् "—पृथ्वीपर गिरा हुआ जल चातकोंको हितकारक नहीं होता है अर्थात् पृथ्वीपर पडे हुए जलके पीनेसे उनको रोग हो जाता है ऐसा वैद्यकशास्त्रका मत है। इस कारण चातक वर्षाका जल ऊपरसे ऊपरही ग्रहण कर लेते हैं। अर्थात जन्मकालसे अभ्यास होनेसे यह इस कार्यमें अत्यन्त चतुर होते हैं।

बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनितसमये सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वाम् मानयिष्यन्ति ॥ २२ ॥

अर्थः–जलकी बूँद ग्रहण करनेमें चतुर चातकोंको देखते हुए और पंक्ती बांधे हुए बलाकाओंको गणना करके हस्तोंसे बतलानेवाले सिद्ध गर्जना शब्दके समय उत्कंठासहित प्रियास्त्रियोंके शीघ्रताके आलिङ्गनोंको प्राप्त होकर तुझको सन्मान करेंगे ॥ २२ ॥

भावार्थः–मेघोंकी वर्षाकी बिन्दुओंके बरसतेही ग्रहण करनेमें चतुर चातकोंको देखते हुए और आकाशमें इकट्ठी उडनेवाली बगलियोंको अंगुलीसे बताबताकर गिनते हुए सिद्ध तेरे गरजनेके समय अपनी स्त्रियोंके अति उत्कठापूर्वक शीघ्रतासे करे हुए आलिङ्गनोंको प्राप्त होकर तेरा अत्यन्त सन्मान करेंगे ॥ २२ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः[२] स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्॥२३॥

पदच्छेदः–उत्पश्यामि द्रुतम् अपि सखे मत्प्रियार्थम् यियासोः कालक्षेपम् ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः प्रत्युद्यातः कथम् अपि भवान् गन्तुम् आशु व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

अन्वयः–हे सखे ! मत्प्रियार्थम् द्रुतम् अपि यियासोः ते

१–सन्मान करनेका कारण यह है कि मेघोंकी गर्जनाको सुनकर सिद्ध स्त्रियें भयभीत होकर अपने पतिके गलेसे आलिंगन करेंगी यह आलिंगनका लाभ सिद्धोंको तेरेही कारण होगा इस कारण सन्मान करेंगेही ।

२–किसी पुस्तकमें "सनयनजलैः" ऐसा पाठ है तहां–नेत्रोंके जलयुक्त ऐसा अर्थ करना ।

ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते कालक्षेपम् अहम् उत्पश्यामि सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कथम् अपि आशु गन्तुं व्यवस्येत् ॥२३॥

अर्थ–हे मित्र ! मेरी प्रियाके निमित्त शीघ्रभी जानेकी इच्छा करनेवाले तेरा कुटजके पुष्पोंसे सुगन्धित प्रत्येक पर्वतकें विषय तेरे कालक्षेपको मैं देखता हूँ आनन्दाश्रुओंसे पूर्ण श्वेत हैं नेत्रोंके प्रांतभाग जिनके ऐसे मयूरां करके अपने शब्दोंको आदरसत्कारको स्थानमें करके सन्मुख गया हुआ तू किसी प्रकारभी शीघ्र जानेको प्रयत्न करेगा ॥ २३ ॥

भावार्थः–हे मित्र ! मेरी प्रियाके समीप तू शीघ्र जानेकी इच्छा करता है परन्तु कुटजके पुष्पोंकी जहाँ सुगन्धि फैल रही है ऐसे अनेक पर्वतोंपर तुझको टिकना पडेगा ऐसा मुझे प्रतीत होता है, और यद्यपि मयूर नेत्रोंमें आनन्दके आँसुओंको भरकर आदरसत्कारके स्थानमें अपने शब्दोंको समर्पण करेंगे परन्तु ऐसे समयपर मेरे कार्यको भूल न जाना, जिसे हो सके वहाँसे शीघ्रही जाना ॥ २३ ॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ॥

१–" ककुभः कुटजेऽर्जुने " इति शब्दार्णव । यहां ककुभ शब्दका अर्थ 'कुटज' किया है, सो कुटजके पुष्प प्रत्येक पर्वतपर होते हैं यह नहीं है किन्तु जो पर्वत उष्णदेशमें हैं उनहींपर विशेष करके कुटजकी उत्पत्ति होती है, और हिमालयके इधर उधर जो पर्वत है उनपर बहुत कम होता है, तहा ककुभ शब्दका अर्थ–शिखर जानना चाहिये इस कारण ' ककुभसुरभि ' इसका अर्थ–शिखरोंके कारण सुन्दर दीखता हुआ ऐसे प्रत्येक पर्वतपर तुझको ठहरना होगा, यह अथ पूर्वोक्त अथकी अपेक्षा अच्छा प्रतीत होता है. और यही अभिप्राय चित्तमें करके कविने वर्णन किया ह एसा प्रतीत हाता है ।

२–मोरोंके नेत्रोंके प्रान्तभाग श्वेतवर्ण होते ह इस कारण 'शुक्लापाङ्ग' यह नाम दिया है–" मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिखावलः—" इति यादवः ।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २४ ॥

पदच्छेदः-पाण्डुच्छायोपवनवृतय: केतकैः सूचिभिन्नैः नीडारम्भैः गृहबलि-भुजाम् आकुलग्रामचैत्याः त्वयि आसन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसाः दशार्णाः ॥ २४ ॥

अन्वयः-हे मेघ! त्वयि आसन्ने सति दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृतयः गृहबलिभुजाम् नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः कतिपयदिनस्थायिहंसाः सम्पत्स्यन्ते ॥ २४ ॥

१-किसी २ पुस्तकमें 'फलपरिणति' ऐसा पाठ है-कल्याणमल्लके सिवाय शेष अनेक टीकाकारोंने यही पाठ माना है । रामनाथटीकाकार-फलानां परिणतिः फलपरिणतिः फलपरिणत्या श्यामाः फलपरिणतिश्यामाः जम्बूवनान्ताः येषु ते फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ताः—अर्थ—फलोंके पकनेसे श्यामवर्ण हो गये हैं जामुनके वृक्षोंके वनोंके प्रदेश जहां ऐसे दशार्णदेश ।

२-भरतमल्लने दश ऋणानि यत्र सः दशार्णः । ऐसी दशार्णपदकी व्याख्या करी है ऋणशब्द किले और जलाशयका वाचक है "छत्तीसगढ" काभी उसमें ३६ छत्तीस किले होनेसे नाम पडा था, इसी प्रकार दश किलोंका स्थान दशार्ण कहलाता है ।

३-"प्राकारो वरणः सालः प्राचीनं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः ।

४-"केतकीमुकुलाग्रेऽपि सूचिः स्यात्"-इति शब्दार्णवः ।

५-मध्याह्नकालमें वैश्वदेव करके गृहके बाहर बलि डालते हैं—इसको—काकबलि, गृहबलि, भूतबलि इत्यादि नामसे कहते हैं । वह काकोंके उद्देशसे डाला जाता है परन्तु इतर पक्षियोंके खानेमेंभी कोई प्रत्यवाय नहीं होता है । यह बलि अथवा, अन्य किसी प्रकारका घरके बाहर पडा हुआ अन्न खानेवाले काक आदि पक्षियोंका ग्रहण होता है ।

६-'चैत्य' शब्द बुद्ध लोगोंका स्थान, और बडे रास्ताके आसपास लगे हुए वृक्षोंका वाचक है-"चैत्यमायतने बुद्धवन्द्ये चोद्देशपादपे"-इति विश्वः ।

७-यहां मल्लिनाथने शब्दार्णव कोशका प्रमाण देकर 'अन्त' शब्दका रम्य अर्थ करा है, हमनेभी वही अर्थ लिखा है परन्तु ऐसे अर्थमें अंतशब्दका प्रयोग प्रायः नहीं आता है 'वनान्त' शब्दका वनभूमि अर्थ अच्छा प्रतीत होता है और कालिदासके काव्योंमेंभी अनेक स्थानमें यही अर्थ आता है जैसा कि ऋतुसंहार काव्यके २१-२४-२६ वें श्लोकमें ।

अर्थः—हे मेघ ! तेरे समीप होनेपर दशार्ण नामवाले देश कलियोंके अग्रभागमें खिले हुए केतकी पुष्पोंकरके पाण्डुवर्णकी हो गई है बगीचोंकी वाडीकी छाया जिनकी ऐसे और गृहके विषय अन्नरूप बलिके भक्षण करनेवाले काक, चिडिया आदि ग्रामके पक्षियोंके घोंसलोंकी रचनासे व्याप्त हैं ग्रामके वृक्ष जिनके ऐसे और पके हुए श्यामवर्ण जामुनके फलोंके वनोंसे रम्य तथा कुछ दिनोंही रहनेवाले हैं राजहंस जहां ऐसे होंगे ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जब तू दशार्ण देशोंके समीप जायगा तब उस देशमें केतकीकी खिली हुई कलियोंसे बगीचे पाण्डुवर्ण दीखने लगेंगे और काक आदि ग्रामके पक्षी उस देशके वृक्षोंपर घोंसले बनाने लगेंगे और उनके घोंसलोंसे उस देशके सम्पूर्ण वृक्षभर जाँयगे, और पके हुए श्यामवर्ण जामुनके फलोंके वन सुन्दर प्रतीत होने लगेंगे और राजहंसोंका उस देशमें थोडेही दिनों रहना होगा ॥ २४ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्
गत्वा सद्यः फलमविकलं[1] कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु[2] यस्मात्
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ २५ ॥

पदच्छेदः—तेषाम् दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणाम् राजधानीम् गत्वा सद्यः फलम् अविकलम् कामुकत्वस्य लब्धा तीरोपान्तस्तनितसुभगम् पास्यसि स्वादु यस्मात् सभ्रूभङ्गम् मुखम् इव पयः वेत्रवत्याः चलोर्मि ॥ २५ ॥

---

१ कल्याणमल्लके सिवाय अन्य टीकाकारोंने 'अविकलम्' इसके स्थानमें 'अतिमहत्' ऐसा पाठ माना है, इसका अर्थ—बहुत थोडा—महान्तम्—अतिक्रांतम्—इति—अतिमहत् ।

२ किसी पुस्तकमें 'स्वादुयुक्तम्' ऐसा पाठ है तहां युक्तशब्दका योग्य अर्थ करके पीनेके योग्य ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

अन्वयः-तेषाम् दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणाम् राजधानीम् गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलम् फलम् लब्धा यस्मात् स्वादु चलोर्मि तीरोपान्तस्तनितसुभगम् वेत्रवत्याः पयः सभ्रूभङ्गम् मुखमिव पास्यसि ॥ २५ ॥

अर्थः-तिन दशार्ण दिशोंकी दिशाओके विषय प्रसिद्ध है 'विदिशा' नाम जिसका ऐसी राजधानीको प्राप्त होकर शीघ्रही कामीपनेके सम्पूर्ण फलको प्राप्त होगा क्योंकि मधुर चञ्चल हैं तरङ्गें जिसमें ऐसे किनारेके समीप गर्जनेसे सुन्दर वेत्रवती नदीके जलको भौंके विलासोंसे युक्त मुखकी समान पान करेगा ॥ २५ ॥

भावार्थः-हे मेघ तू तिन दिशोंकी विदिशा नामक राजधानीको प्राप्त होकर शीघ्रही स्त्रीविलासके सुखको प्राप्त होगा क्योंकी तरङ्गोंके कारण हिलनेवाले और तीरपर तेरे गर्जनेसे सुन्दर उस देशकी वेत्रवती नदीके जलको विलासिनी स्त्रीके चंचलनेत्र युक्त मुखका चुम्बन करनेकी समान पीवेगा ॥ २५ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितामिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २६ ॥

१--'विदिशा' के विषयमें वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें ऐसा लिखा है कि जब शत्रुघ्न रामचन्द्रके साथ स्वर्गलोकको गये तब उन्होंने मथुराका राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्रको दिया, और विदिशाका राज्य छोटे पुत्रको दिया । ' "सुबाहुमथुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् । सुबाहुं मथुरायां वै वैदिशे शत्रुघातिनम् ।" वा. रा. उ. का. स. १०९ श्लोक १० । ११ । एच् एच् विल्सन्‌साहबने ऐसा लिखा है कि विदिशाही दशार्णदेशकी राजधानी थी उसको आजकल 'भेलसा' ऐसा कहने लगे है ।

२-यहाँ कामुकत्वके फलको प्राप्त होगा ' ऐसा वर्णन करके चुम्बनका वर्णन करा है इसमें कारण यह है कि कामीपनेका फल चुम्बनही है यथा-" कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते ।"

३--किसी पुस्तकमें ' त्वत्संसर्गात् ' ऐसा पाठ है अर्थ एकही है ।

पदच्छेदः-नीचैराख्यम् गिरिम् अधिवसेः तत्र विश्रामहेतोः त्वत्सम्पर्कात् पुलकितम् इव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः नागराणाम् उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिः यौवनानि॥ २६ ॥

अन्वयः-हे मेघ ! तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव नीचैराख्यम् गिरिम् अधिवसेः यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति ॥ २६ ॥

अर्थः-हे मेघ ! तहां विश्राम करनेके हेतु पुष्पित कदम्बोंकरके तेरे संयोगसे पुलकायमानसा, नीच है नाम जिसको ऐसे पर्वतपर वास कर जो पर्वत वेश्याओंके मैथुनके सुगन्धिको प्रगट करनेवाले पाषाणके स्थानोंकरके नगरनिवासियोंके अतिउत्कट यौवनोंको प्रकट करता है ॥ २६ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! तेरे समागमसे फूले हुए कदम्बके वृक्षोंके मिषसे पुलकायमानसा दीखता हुआ तिस विदिशाके विषय समीपके नीच नामक पर्वतपर तू विश्राम करना जो पर्वत वेश्याओंकी रति-सुगन्धियोंसे युक्त अपनी गुफाओंकें द्वारा विदिशाके रहनेवाले पुरुषोंके यौवनको प्रकट करता है ॥ २६ ॥

विश्रान्तः सन्व्रज वैननदीतीरजातानि सिञ्चन्
उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम्
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२७॥

१-' विश्राम ' शब्द पाणिनीय व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध नहीं होता है क्योंकि वास्तविक ' विश्रम ' शब्दसे भावार्थक ' घञ् ' प्रत्यय होनेपर यह शब्द मकारान्त है इस कारण (७-३-३४) इसके अनुसार वृद्धि नहीं हो सक्ती इस कारण ' विश्रम ' ऐसाही शब्द सिद्ध होता है। तथापि ' विश्रामो वा ' इस चान्द्रव्याकरणके सूत्रानुसार विकल्प करके वृद्धि होनेसे ' विश्राम-विश्रम ' दोनों शब्द सिद्ध होते हैं।

२ किसी २ पुस्तकमें ' नवनदी ' ऐसा पाठ है भरत और कल्याणमल्ल नामक टीका-कारोंने नवनदी नामकी एक नदी है ऐसा व्याख्या करी है।

पदच्छेदः-विश्रान्तः सन् व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्चन् उद्यानानाम् नवजलकणैः यूथिकाजालकानि गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम् छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः-तत्र विश्रान्तः सन् वननदीतीरजातानि उद्यानानाम् यूथिकाजाल-कानि नवजलकणैः सिञ्चन् च गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम् पुष्पलावीमुखानाम् छायादानात् क्षणपरिचितः (सन्) व्रज ॥ २७ ॥

अर्थः-तहां विश्राम करता हुआ वनकी नदियोंके किनारेपर उत्पन्न होनेवाले बगीचोंके जुहीके पुष्पोंकी कलियोंको नवीन जलके कणोंकरके सींचता हुआ और कपोलोंके पसीनेको दूर करनेकी पीडा करके कुम्हलाये हैं कानोंके कमल जिनके ऐसी मालिनियोंके मुखोंको छाया देनेसे क्षणमात्रको परिचित होता हुआ गमन कर ॥ २७ ॥

भावार्थः-हे मित्र मेघ ! तिस नीच नामक पर्वतपर विश्राम करके वनकी नदियोंके किनारोंपर अपने आप उत्पन्न होनेवाले जुहीके पुष्पोंकी कलियोंको अपने नवीन जलसे सींचता हुआ और गालोंके पसीनेके पूंछनेसे जिनके कानोंमें धारण करे हुए कमल कुमला गये हैं ऐसी मालिनियोंके मुखोंपर छाया करके क्षणमात्र उनसे परिचय करके आगेको जा ॥ २७ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा[2] स्म भूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरित[3]चकितैस्तत्र पौरांगनानाम्
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २८ ॥

१-- सामान्यतः ' जाल ' शब्दका अर्थ समूह प्रसिद्ध है परन्तु--
" कोरकजालककलिकाकुड्मलमुकलानि तुल्यानि "
इस हलायुधकोशके प्रमाणानुसार यहां कलीका वाचक माना है ।

२--किसी पुस्तकमें ' मा स्म ' की जगह ' मा च ' ऐसा पाठ है परन्तु अर्थ एकही है ।

३--किसी पुस्तकमें ' स्फुरित ' की जगह ' स्फुरण ' ऐसा पाठ माना है और भरतसनातन- तथा हरिगोविन्दने तो ' स्फुरण ' पाठ मानकरही व्याख्या करी है अर्थ एकही है ।

पदच्छेदः–वक्रः पन्थाः यत् अपि भवतः प्रस्थितस्य उत्तराशाम् सौधोत्संग-प्रणयविमुखः मा स्म भूः उज्जयिन्याः विद्युद्दामस्फुरितचकितैः तत्र पौराङ्गनानाम् लोलापाङ्गैः यदि न रमसे लोचनैः वञ्चितः असि ॥ २८ ॥

अन्वयः–उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः यदपि वक्रः तथा अपि उज्जयिन्याः सौधोत्संगप्रणयविमुखः मा स्म भूः तत्र विद्युद्दामस्फुरितचकितैः लोलापाङ्गैः पौरांगनानाम् लोचनैः यदि न रमसे तर्हि त्वम् वञ्चितः असि॥२८॥

अर्थः–उत्तर दिशाको जानेवाले तेरा मार्ग यद्यपि टेढा है तथापि उज्जयिनीनगरीके राजमन्दिरोंके मध्यभागके परिचयसे विमुख मत हो तहाँ बिजलीरूप लताके चमकनेसे चकित हुए चञ्चल हैं अपांग जिनके ऐसे नगरकी स्त्रियोंके नेत्रोंकरके यदि नहीं रमण करेगा तो तू ठगा हुआ है ॥ २८ ॥

भावार्थः–उत्तरदिशाको जाते हुए तुझको यद्यपि उज्जयिनीका मार्ग कुछ थोडा टेढा पडेगा, तथापि उज्जयिनीके राजमन्दिरोंको न देखनेकी इच्छा मत कर, क्योंकि तहाँ बिजुलीकी तर्जनासे डरती हुई स्त्रियोंके चञ्चल नेत्रोंके कटाक्षोंसे मोहित होकर यदि तू न रीझा तो तेरा जन्म लेनाही वृथा हो जायगा ॥ २८ ॥

वीचिक्षोभस्तनित[2]विहगश्रेणिकांचीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः[3] सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणय[4]वचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २९ ॥

पदच्छेदः–वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः संसर्पन्त्याः स्खलित-

---

१–' प्रणय ' शब्द सामान्यतः प्रेमका वाचक है परन्तु—"प्रणयः स्यात्परिचये याच्ञायां सौहृदेऽपि च ।" इति यादवः । इस प्रमाणसे परिचयार्थक माना है ।

२– किसी पुस्तकमें ' क्वणित ' ऐसा पाठ है इसका अर्थ–शब्दित ।

३–किसी पुस्तकमें ' रसाभ्यन्तरम् ' ऐसा पाठ है इसका अर्थ–रसके भीतर ।

४–किसी पुस्तकमें ' प्रणयिवचनम् ' ऐसा पाठ है इसका अर्थ–प्रेमयुक्त वचन ।

सुभगम् दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य स्त्रीणाम् आद्यम् प्रणयवचनम् विभ्रमः हि प्रियेषु ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे सखे ! पथि वीचिक्षोभस्तनितविहंगश्रेणिकांचीगुणायाः स्खलितसुभगम् संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव तथा हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः एव आद्यम् प्रणयवचनम् ॥ २९ ॥

अर्थः—हे मित्र ! मार्गमें तरंगोंके हिलनेसे बोलते हुए हंसोंकी पंक्तिही है कमरकी जंजीर जिसके ऐसी टकरानेसे सुन्दर चलती हुई और भ्रमररूप नाभिको दिखलानेवाली निर्विन्ध्या नदीसे मिलकर जल है भीतर जिसके ऐसा हो। क्योंकि स्त्रियोंके पतियोंके विषय विलासही पहला प्रार्थनाका वचन यह निश्चित है ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मित्र ! तरंगोंके इधर उधर हिलनेसे आनन्दित होकर बोलनेवाले हंसोकी पंक्तिही जिसकी कमरका भूषण है और मन्द मन्द चलनेवाली और जिसके जलके प्रवाहमें पडनेवाले भ्रमर नाभिकी समान दीखते हैं ऐसी उस निर्विन्ध्या नामक नदीके रसको ग्रहण कर (यदि कहै कि उसकी प्रार्थना करे विना मैं उसका रस किस प्रकार ग्रहण करूंगा तहाँ कहते हैं) क्योंकि विलासिनी स्त्रियोंके प्रियपुरुषोंके विषय दिखाये हुए विलासरूप चिह्नही उसकी पहली प्रार्थना होती है ॥ २९ ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला सा त्वतीतस्य सिंधुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ॥

१—यद्यपि सामान्यतः ' विहग ' शब्द पक्षिमात्रका वाचक है परन्तु यहां हंसही अर्थ ग्रहण करा है क्योंकि विन्ध्याचलपर विशेषतः हंसही उत्पन्न होते हैं।

२—यहां ' रस ' शब्दमें श्लेष है ' रस ' शब्द शृंगारादि रसका वाचक है यथा- " शृंगारादौ विषे वीर्य्ये गुणे रागे द्रवे रसः । " इत्यमरः । अर्थात् नायिकापक्षमें शृंगारके अभ्यन्तर हो अर्थात् शृंगार रसका अनुभव कर।

३—मल्लिनाथको छोडकर कल्याणमल्ल आदि अन्य टीकाकारोंने ' तामतीतस्य ' ऐसा पाठ माना है।

४—किसी किसी पुस्तकमें ' शर्णि ' ऐसा पाठ है इसका अर्थ—गल हुए।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३० ॥

पदच्छेदः—वेणीभूतप्रतनुसलिला सा तु अतीतस्य सिन्धुः पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः सौभाग्यम् ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती कार्श्यम् येन त्यजति विधिना सः त्वया एव उपपाद्यः ॥ ३० ॥

अन्वयः—वेणीभूतप्रतनुसलिला तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया अत एव हे सुभग विरहावस्थया अतीतस्य ते सौभाग्यम् व्यञ्जयन्ती सा सिंधुः येन विधिना कार्श्यम् त्यजति सः त्वया एव उपपाद्यः ॥ ३० ॥

अर्थः—वेणीके समान हो गया है अल्प जल जिसमें और किनारेपर उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंसे गिरे हुए पुराने पत्तोंकी समान पाण्डुवर्णवाली इस कारण ही हे भाग्यवान्! विरहकी दशाकरके बहुत कालसे आये तुझे बीते हुए सौभाग्यको प्रगट करती हुई वह नदी जिस प्रकार दुर्बलताको त्यागे वह विधि तुझ करके ही करना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—वेणीके समान जिसका प्रवाह अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है और दोनों किनारोंपरके वृक्षोंसे गिरनेवाले पीतवर्ण पक्के पत्तोंसे जिसका प्रवाहरूप शरीर पाण्डुवर्ण प्रतीत होता है, इस कारण हे भाग्यवान् मेघ! अत्यन्त दिनोंके अनन्तर गया हुआ जो तू तिस तुझको विरहमें बीते हुए अपने सौभाग्यको दिखाती हुई वह निर्विन्ध्या नामक नदी जिस प्रकार दुर्बलपनेका त्याग करे वह उपाय तुझको करना चाहिये अर्थात् तेरे वियोगसे दुर्बल होनेवाली निर्विन्ध्या नामक नदीसे संभोग करके उसके दुर्बलपनेको दूर कर ॥ ३० ॥

---

१ प्रिय पुरुषसे वियोगको प्राप्त होकर कामदेवसे पीडित होनेवाली नायिकाकी दश प्रकारकी स्थिति होती है जैसा जयदेव कविने कहा है—

"नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ संकल्पः।
निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः॥
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः।"

इस श्लोकमें तनुता नामक पांचवी अवस्थाका वर्णन करा है।

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खंडमेकम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः-प्राप्य अवन्तीन् उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् पूर्वोद्दिष्टाम् अनुसर पुरीम् श्रीविशालाम् विशालाम् स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणाम गाम् गतानाम् शेषैः पुण्यैः हृतम् इव दिवः कान्तिमत् खण्डम् एकम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः-उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य तत्र पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् विशालाम् पुरीम् अनुसर कथमिव स्थितां पुरीम् गाम् गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः पुण्यैः हृतम् कान्तिमत् एकम् दिवः खण्डम् इव ॥ ३१ ॥

अर्थः-उदयन नामक राजाकी कथाके तत्त्वको जाननेवाले हैं वृद्ध पुरुष जिसमें ऐसे अवन्ति नामक देशोंको प्राप्त होकर तहाँ पहले बताई हुई लक्ष्मीकरके विशेष शोभायमान विशाला नामक नगरीको जा किस प्रकार स्थित है वह नगरी पृथ्वीतलको प्राप्त हुए स्वर्गवासियोंके शेष पुण्योंकरके लाया हुआ शोभायुक्त एक स्वर्गका टुकडा जैसे ॥ ३१ ॥

भावार्थः-जिन देशोंमें उदयनकी कथाको जाननेवाले लोग रहते हैं ऐसे अवन्ति (मालव) देशोंको जाकर सम्पत्तिकी अधिकतासे शोभायमान पहले कही हुई उज्जयिनी नामक नगरीमें प्रवेश कर जो उज्जयिनी स्वर्गसे गिरे हुए पुरुषोंके सञ्चित कर्म्मोंके बलसे पृथ्वीमें आये हुए स्वर्गके एक खण्डकी समान शोभित होती है ॥ ३१ ॥

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ॥

१-उदयन नामक राजा था उसकी कौशाम्बी नामक नगरी थी और इसने उज्ज-यिनीके राजा चण्डसेनकी कन्या वासवदत्ताका विवाह किया था ऐसी इत्यादिक कथाको जाननेवाल वृद्ध लोग जहां वास करते हैं ॥

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः–दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलम् कूजितम् सारसानाम् प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः यत्र स्त्रीणाम् हरति सुरतग्लानिम् अङ्गानुकूलः शिप्रावातः प्रियतमः इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३२ ॥

अन्वयः–यत्र प्रत्यूषेषु पटु मदकलम् सारसानाम्[1] कूजितम् दीर्घीकुर्वन् स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः[2] अङ्गानुकूलः शिप्रावातः[3] प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतमः इव स्त्रीणाम् सुरतग्लानिम् हरति ॥ ३२ ॥

अर्थः–जिस नगरीमें प्रातःकालके समय स्पष्ट गर्वसे मधुर सारसोंके शब्दको बढाता हुआ प्रफुल्लित कमलोंकी सुगन्धिकी मित्रतासे सुगन्धि शरीरको सुख देनेवाला शिप्रा नदीका वायु मैथुनके विषयकी प्रार्थनाको विस्मृत करानेवाले पतिकी समान स्त्रियोंके संभोगके खेदको दूर करता है ॥ ३२ ॥

भावार्थः–प्रातःकालके समय शीतल वायुके स्पर्शसे कामोद्दीपन होनेसे मैथुन करनेकी इच्छासे रात्रिमें करे हुए मैथुनको भुलाते हुए विनती करनेवाले पतिकी समान जिस उज्जयिनीमें प्रातःकालके समय सारसोंके अव्यक्त मधुर शब्दको बढानेवाला और प्रफुल्लित कमलोंके सुगन्धिसे वसा हुआ, शरीरको सुख देनेवाला, शिप्रा नदीका वायु पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुए स्त्रियोंके श्रमको दूर करता है ॥ ३२ ॥

१–सारस नाम प्रसिद्ध सारस पक्षीका है और हंसकाभी है ।
" सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः । " इति यादवः ।
" चक्राङ्गः सारसो हंसः " इति शब्दार्णवः ।

२–" रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री " इति यादवः ।

३–शिप्रा नदी मालवेमें है इसको 'क्षिप्रा' कहते हैं, इसमें कारण यह प्रतीत होता है कि यह नदी अत्यन्त वेगसे चलनेवाली है इस कारण इसका नाम 'क्षिप्रा' पड गया है, यह विन्ध्याचलसे उत्पन्न हुई है देवास नामके शहरके धोरे इसका फाँट बहुत वडा है और उज्जयिनीके धोरेभी इसका फाँट बडा है, यह राजपूतानामें शिवपराके समीप चंबला नदीसे मिली है ।

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ॥
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः-हारान् तारान् तरलगुटिकान् कोटिशः शंखशुक्तीः शष्पश्यामान् मरकतमणीन् उन्मयूखप्ररोहान् दृष्ट्वा यस्याम् विपणिरचितान् विद्रुमाणाम् च भङ्गान् संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः ॥ ३३ ॥

अन्वयः-यस्याम् विपणिरचितान् तारान्[2] तरलगुटिकान्[3] हारान् च कोटिशः शंखशुक्तीः च शष्पश्यामान्[4] उन्मयूखप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणाम् भङ्गान् दृष्ट्वा सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः[5] संलक्ष्यन्ते ॥ ३३ ॥

अर्थः-जिस उज्जयिनीके विषय दूकानोंके रचना किये हुए स्वच्छ मध्यमें लम्बायमान मणियोंवाले हारोंको और करोडों शंख और सीपियोंको और हरी दूर्वाकी समान बाहरको निकल रही हैं किरणें जिनमें ऐसे मरकत मणियोंको तथा मूँगोंके टुकडोंको देखकर समुद्र जलमात्र है शेष जिनमें ऐसे प्रतीत होते हैं ॥ ३३ ॥

१-मल्लिनाथका ऐसा मत है कि, यह श्लोक और इसके आगेके दो श्लोक अर्थात् ३३-३४-३५ श्लोक किसी नवीनने बनाकर लिख दिये हैं कालिदासोक्त नहीं हैं परन्तु इन श्लोकोंको योग्य समझकर व्याख्या और संग्रह किया है ।

२-यद्यपि " तार " शब्दके अनेक अर्थ हैं परन्तु यहां स्वच्छ अर्थ माना है। जैसे—
" तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरले शुद्धमौक्तिके । " इति विश्वः ।

३-" पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिकाबद्धपारदे । " इति शब्दार्णवः ।

४-' शष्प ' नाम हरी घासका वाचक है । जैसे—
" शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम् । " इत्यमरः ।

५-समुद्रोंको ' रत्नाकर-रत्नोंकी खानि ' कहते हैं, उज्जयिनीके बाजारमें ऊपरोक्त कथनानुसार अनेक रत्नोंके ढेर जो लग रहे थे उससे यह प्रतीत होता था कि रत्नाकरोंके संपूर्ण रत्न निकालकर यहां रख दिये गये हैं इस कारण अब रत्नाकरोंमें केवल जलही रह गया है । यदि यह वर्णन असम्भव हो तबभी इससे अतिशयोक्तिके द्वारा उज्जयनीका ऐश्वर्य वर्णन करा गया है ।

भावार्थः—जिस नगरीमें स्वच्छ और जिनके मध्यभागमें महारत्न गुफे हुए हैं ऐसे करोंडों हार करोंडों शंख और सीपियें और हरी २ घासके समान मरकत मणियें तथा करोंडों मूंगोंके टुकडे यह सम्पूर्ण पदार्थ विक्रयार्थ बाजारमें देखकर रत्नोंके उत्पत्तिस्थान समुद्रोंमें केवल जलही जल शेष रह गया है रत्न उज्जयिनीमें आ गये हैं ऐसा प्रतीत होता है ॥ ३३ ॥

चण्डस्यात्र प्रियदुहितरं वत्सराजो विजह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ॥
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तंभमुत्पाट्य दर्पात्
इत्यागन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः—चण्डस्य अत्र प्रियदुहितरं वत्सराजः विजह्रे हैमम् तालद्रुमवनम् अभूत् अत्र तस्य एव राज्ञः अत्र उद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भम् उत्पाट्य दर्पात् इति आगन्तून् रमयति जनः यत्र बन्धून् अभिज्ञः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अत्र वत्सराजः चण्डस्य प्रियदुहितरम् विजह्रे अत्र तस्य एव राज्ञः हैमम् तालद्रुमवनम् अभूत् अत्र नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्त आसीत् किल इति अभिज्ञः जनः आगन्तून् बन्धून् यत्र रमयति ॥ ३४ ॥

अर्थः—इस उज्जैनीमें वत्सदेशका राजा उदयन चण्डहास नामवाले राजाकी बेटीको हरता हुआ इस उज्जैनीमें तिस ही राजाका हैम नामवाला ताडके वृक्षोंका वन था इस उज्जैनीमें नलगिरि नामवाला हाथी गर्वसे खम्बेको उखाडकर उन्मत्त होकर घूमनेवाला था निश्चय करके इस प्रकार पूर्व वृत्तान्तको जाननेवाले लोग देशान्तरसे आये हुए मित्रोंको प्रसन्न करते हैं ॥ ३४ ॥

१–उज्जैनीके राजा चण्डसेनको देवीने तलवार और नलगिरि हाथी यह दो रत्न दिये थे "सखड्गो मत्तहस्तीन्द्रो नलगिरिरिति प्रभो । द्वे तस्य रत्ने शक्रस्य कुलिशैरावताविव ॥" कथासरित्सागर लम्बक ३ सर्ग २ ।

२–इस श्लोकमें गन्तृशब्दको आ उपसर्ग लगनेसे अन्तिम स्वरको तुमुन् प्रत्यय होकर द्वितीयाके बहुवचन होकर 'आगन्तून्' ऐसा रूप बना है ।

भावार्थः[1]-यहां वत्सदेशके राजा उदयनने चण्डहास राजाकी प्रिय कुमारी वासवदत्ता हरण की इस स्थानमें उस राजाका सोनेके ताडोंका वन था इस स्थानम तिस राजाका नलगिरि हस्ती उन्मत्त हो खम्भेको उखाड उखाड कर घूमता था इस प्रकार कहके देशान्तरसे आये लोगोंको यहांके जाननेवाले पुराने लोग प्रसन्न करते हैं ॥ ३४ ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ॥
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं[2] नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागांकितेषु ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः-जालोद्गीर्णैः उपाचितवपुः केशसंस्कारधूपैः बन्धुप्रीत्या भवनाशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः हर्म्येषु अस्याः कुसुमसुरभिषु अध्वखेदम् नयेथाः लक्ष्मीम् पश्यन् ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३५ ॥

अन्वयः-जालोद्गीर्णैः केशसंस्कार[3]धूपैः उपचितवपुः च बन्धुप्रीत्या भवन-

१-इस श्लोकमें भाविक नामवाला अलंकार है उसका लक्षण यह है कि--

" अतीतानागत यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्षिते ।
अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदाहृतम् ॥ "

अर्थात् अतीत अथवा भविष्यत् कालमें होनेवाली बातका जहां प्रत्यक्षकी रीतिसे वर्णन किया जाय तहां अत्यन्त अद्भुत अर्थ कहनेसे भाविक अलंकार होता है ।

२-किसी पुस्तकमें " खिन्नान्तरात्मा " और ' त्यक्त्वा खेदम् ' ऐसा पाठ है और मल्लिनाथके सिवाय सब टीकाकारोंने यही पाठ माना है उसके मतमें यह श्लोक और इसके आगेका श्लोक दोनोंका युग्म माना गया है जब ' नयेथाः ' इस क्रियापदके न होनेसे युग्म किया जायगा तब--' अध्वखिन्नान्तरात्मा, त्वम् खेदम्, त्यक्त्वा चण्डीश्वरस्य धाम यायाः ' ऐसा अन्वय करना चाहिये ।

३-' केशसंस्कारधूपैः " इसका अर्थ ' केशसंस्कारके अर्थ किया हुआ धूप ' ऐसा किया है । यहां (२ । १ । २६) इस सूत्रके अनुसार यहां चतुर्थीतत्पुरुष समास होता है और उसमें प्रकृतिकी विकृति होनी चाहिये परन्तु यह प्रकृतिका विकार हुआ नहीं अर्थात् यहां षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ है, इस विषयमें व्याकरण महाभाष्यके अध्याय २ पाद १ आह्निक २ सूत्र २५ वेंकी व्याख्यामें विशेष विचार किया है ।

शिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु हर्म्येषु लक्ष्मीम् पश्यन् त्वम् अध्वखेदम् नयेथाः ॥ ३५ ॥

अर्थः—झरोखोंसे निकलनेवाले केशोंको सुगंधित करनेको धूपोंसे पुष्ट है देह जिनके ऐसा और मित्रकी प्रीतिसे घरके पाले हुए मोरोंने दी है नृत्यरूप भेंट जिसको ऐसा, पुष्पोंकी सुगन्धवाले सुन्दर स्त्रियोंके चरणोंके रंगसे चिह्नित धनी लोगोंके स्थानोंमें इस उज्जयनीकी सम्पत्तिको देखता हुआ तू मार्गके खेदको दूर करेगा ॥ ३५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जिस उज्जयिनीमें स्त्रियोंने केश सुखानेके निमित्त अथवा सुगंधित करनेके अर्थ किया हुआ चंदनादिका धूप झरोंखोंमेंसे बाहरको निकलकर तेरे अंगको लगेगा तो तू पुष्ट होगा और घरोंमें पाले हुए मोर प्रेमपूर्वक तुझको नृत्यरूपी भेंट देंगे तथा पुष्पोंसे सुवासित और जिनमें सुन्दर स्त्रियोंके चरणोंके रंग लग रहे हैं ऐसे घरोंमें नगरके ऐश्वर्यको देखकर मार्गके परिश्रमको दूर कर ॥ ३५ ॥

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः पुण्यम् यायाः त्रिभुवनगुरोः धाम चण्डीश्वरस्य धूतोद्यानम् कुवलयरजोगन्धिभिः

१—क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुए कालकूट विषको खानेसे शिवजीके कंठकी कान्ति नीलवर्ण हो गई है, यह कथा भागवतके स्कन्ध ८ अध्याय ७ श्लोक ४३ में कही है; इस कारणही शिवजीका नाम नीलकण्ठ है और सजल मेघभी श्यामवर्ण होता है तथा शिवजीकी ८ मूर्तियोंमेंसे आकाशभी एक मूर्ति है और मेघ आकाशमें रहता है इस कारण यहां इन दोनोंका सादृश्य वर्णन किया है ।

२—उज्जैनीमें महाकाल नामवाले शिवका मंदिर प्रसिद्ध है, इनका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं इस विषयमें स्कन्दपुराणमें कहा है कि—

" आकाशे तारकालिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा कामितमाप्नुयात् ॥ "

गन्धवत्याः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः मरुद्भिः ॥ ३६ ॥

अन्वयः–भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यम् कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानम् धाम यायाः ॥ ३६ ॥

अर्थः–स्वामीके कण्ठकी कान्तिवाला है इस कारण शिवके दूतों-करके आदरपूर्वक देखा हुआ त्रिलोकीके स्वामी पार्वतीपति शिवजीके पवित्र कमलके परागकी सुगंधिवाले जलमें क्रीडा करनेमें लगी हुई स्त्रियोंके चन्दनादि द्रव्योंसे वसे हुए गन्धवती नदीके पवनों करके कंपायमान है बगीचा जिसका ऐसे स्थानको तू जा ॥ ३६ ॥

भावार्थः–शिवजीके कण्ठकी छबिकी समान तुझको देखकर उनके दूत तेरा आदर करेंगे त्रिलोकीपति श्रीचण्डिकेश्वर महादेव (महाकाल नामवाले) के पवित्र और जहां बगीचे कमलके परागसे सुगन्धित और जलमें क्रीडा करनेवाली स्त्रियोंके चन्दनादि गन्धद्रव्योंसे वसनेवाले गन्धवती नदीके जलोंसे मिले हुए पवनोंसे कम्पायमान किये जाते हैं ऐसे स्थानको तू जा ॥ ३६ ॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ॥
कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्॥ ३७॥

पदच्छेदः–अपि अन्यस्मिन् जलधर महाकालम् आसाद्य काले स्थातव्यम् ते नयनविषयम् यावत् अत्येति भानुः कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहताम् शूलिनः श्लाघनी-याम् आमन्द्राणाम् फलम् अविकलम् लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥ ३७ ॥

१–यहां तिक्तशब्द सुगन्धिका वाचक है । जैसे–

" कटु तिक्तं कषायस्तु सौरभ्ये च प्रकीर्त्तितः । " इति हलायुधः॥

२–किसी प्राचीन पुस्तकमें ' आमन्त्राणां फलमिव कलम् ' ऐसा पाठ है, इसके माननेसे– ' आमन्त्राणाम्, फलम्, इव, गर्जितानाम्, कलम्, फलम् लप्स्यसे' ऐसा अन्वय करना चाहिये इसका तात्पर्य यह है कि–पूजाके समय मन्त्र उच्चारण करनेसे जो फल मिलतता है वह तुझको गर्जनेसे मिलेगा ।

अन्वयः—हे जलधर ! महाकालम् अन्यस्मिन्नपि काले आसाद्य यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति तावत् ते[1] स्थातव्यम् शूलिनः श्लाघनीयाम् सन्ध्याबलिपटहताम् कुर्वन् त्वम् आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे ॥३७॥

अर्थः—हे मेघ ! महाकालस्थानको दूसरेभी कालमें प्राप्त होकर जबतक सूर्य नेत्रोंके विषयको अतिक्रमण करे तबतक तुम्हें स्थित रहना चाहिये महादेवके प्रशंसायोग्य संध्याकालकी पूजाके नगाडेपनको करता हुआ तू कुछ गम्भीर गर्जनशब्दोंके सम्पूर्ण फलको प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! उन महाकालेश्वरके समीप यदि सन्ध्याकालको छोडकर तू अन्य समयमें पहुँचे तो सूर्यके अस्त होनेके समयपर्यन्त तहां रहना और प्रदोषकालकी पूजाके समय अपने गर्जनरूप नगाडेको बजाकर श्रीमहाकालेश्वरकी स्तुति करना उससे तू अपने धीरगम्भीर गर्जनके पूर्ण फलको पावेगा ॥ ३७ ॥

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र[2] लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून्
आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः—पादन्यासक्वणितरशनाः तत्र लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः त्वत्तः नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून् आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—तत्र पादन्यासक्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः

१—यह शब्द यद्यपि षष्ठ्यन्त है तथापि तृतीयाका अर्थ होता है क्योंकि—(२ । ३ । ७१) इस सूत्रके अनुसार तृतीयाके स्थानमें षष्ठी हुई है ।

२—यह पाठ अनेक टीकाओं और अनेक प्राचीन पुस्तकोंमें देखनेमें आया है अतएव यहांभी लिखा है और मल्लिनाथकी टीकाको देखनेसेभी यही पाठ यथार्थ प्रतीत होता है, इस कारण ' पादन्यासैः क्वणितरशनाः ' ऐसा भिन्न २ पदोंका पाठ जो बम्बई और कलकत्तेकी पुस्तकोंमें देखनेमें आता है सो प्रमाद है ।

चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः नखपदसुखान् वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते ॥ ३८ ॥

अर्थः-जिस उज्जैनीके विषय चरणके रखनेसे शब्दायमान हैं मेखला जिनकी ऐसी लीलासे कम्पायमान करे हुए रत्नोंकी कान्तिसे जडे हुए हैं डंडे जिनके ऐसे चँवरोंकरके परिश्रमको प्राप्त हुए हैं हाथ जिनके ऐसी वेश्याएँ तुझसे नखके घावोंके विषय सुख देनेवाले वर्षाके पहले बिन्दुओंको प्राप्त होकर तेरे विषय भौरोंकी पंक्तियोंकी समान लम्बे कटाक्षोंको छोडेंगी ॥ ३८ ॥

भावार्थः-उन महाकालेश्वरके मंदिरके विषय नृत्य करनेमें जिनकी तागडी बाज रही है और हाथमें रत्नोंसे जडे हुए कंकडोंकी कान्तिसे युक्त दंडेवाले चँवरोंको लेनेसे परिश्रमको प्राप्त होनेवाली वेश्यायें तेरे प्रथम वर्षा करे हुए जलकी बूँदोंसे नखके घावोंमें सुखको प्राप्त होकर भौरोंकी पंक्तिकी समान लंबे कटाक्षोंको तेरे ऊपर डालेंगी ॥ ३८ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं[२] दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३९ ॥

१-' चमर धारण करनेसे जिनके हाथ परिश्रमको प्राप्त होते हैं ' ऐसा कहा है इससे यह प्रतीत होता है कि वह वेश्याएँ ' दैशिक' नृत्य करती थीं क्योंकि-

" खड्ग-कन्दुक-वस्त्रादि-दंडिका-चामरस्रजः ।
वीणां च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्यं तद्दैशिकं भवेत् ॥ "

हाथमें पंखा, गेंद, वीणा, तलवार, अथवा वस्त्र लेकर देवताके सामने नाच करनेका नाम दैशिक नृत्य है ऐसा नृत्यसर्वस्व ग्रन्थमें लिखा है ।

इस स्थानमें बहुत पुस्तकोंमें ' जवा ' पाठ लिखा है परन्तु अमरकोषमें तथा अन्य पुस्तकोंमें ' जपा ' शब्द है इससे प्रतीत होता है कि देशभेदसे वर्णभेद होकर जवा पाठ हो गया है ।

पदच्छेदः—पश्चात् उच्चैः भुजतरुवनम् मण्डलेन अभिलीनः सान्ध्यम् तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तम् दधानः नृत्यारम्भे हर पशुपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छाम् शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम् दृष्टभक्तिः भवान्या ॥ ३९ ॥

अन्वयः—पश्चात् नृत्यारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तम् सान्ध्यम् तेजः दधानः त्वम् उच्चैः भुजतरुवनम् मण्डलेन अभिलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम् दृष्टभक्तिः[2] (सन्) पशुपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर ॥ ३९ ॥

अर्थः—तदनन्तर ताण्डवनृत्यके समय नवीन खिले हुए जपाके पुष्पोंकी समान रक्तवर्ण सन्ध्याकालके तेजको धारण करता हुआ तू ऊंचे भुजारुपी वृक्षोंके वनको मंडलाकारसे व्याप्त होता हुआ पार्वती करके शान्त हो गया घबराहट जिनकी ऐसे नेत्रों करके देखीगई है रचना जिसकी ऐसा (होता हुआ) शिवजीकी गीले हाथीके चर्मकी इच्छाको दूर कर ॥ ३९ ॥

भावार्थः—सायंकालके समय शिवजीकी पूजाके अनन्तर नवीन फूले हुए जपाके पुष्पोंकी समान सन्ध्याकालको लालवर्णवाला तू शिवजीके ताण्डवनृत्य करनेपर उनकी भुजारुपीवृक्षोंके वनमें व्याप्त होकर घबराहट दूर होनेसे निश्चल नेत्रवाली पार्वती करके अवलोकन किया हुआ महादेवकी गीली हाथीका चर्म ओढनेकी इच्छाको पूरण कर अर्थात् गजचर्मके स्थानापन्न हो ॥ ३९ ॥

१--शिवजीने गजासुरको मारा और उसकी गीली चर्मको ओढकर पार्वतीके सामने नृत्य किया तब यह कथा पुराणोंमे वर्णन करी है गजकी चर्म गीली और रुधिरयुक्त होनेसे उसकी सदृशता सन्ध्याकालके मेघको दी है क्योंकि मेघका रंग काला होता है और सन्ध्याकालके समय उसपर सूर्यकी लाल किरणे पडती हैं तो हाथीकेसा रंग हो जाता है।

२- यहां ' दृष्टभक्तिः ' इस पदमें (६। ३। ३४) इस सूत्रके अनुसार दृष्ट-शब्दका पुंल्लिगत्व होता है परन्तु भक्तिशब्दका प्रियादिगणमें संग्रह किया है और उस गणमें अपवाद है अर्थात् पुंल्लिगत्व नहीं होता है ऐसा सामान्यतः समाधान करते है परन्तु वस्तुतः इस शब्दके विषय अनेक मतभेद है भोजराजाने यह रूप सिद्ध होता है ऐसा कहा है तथापि वास्तविक समाधान नहीं होता है।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मास्म भूर्विक्लवास्ताः ॥ ४० ॥

पदच्छेदः-गच्छन्तीनाम् रमणवसतिम् योषिताम् तत्र नक्तम् रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैः तमोभिः सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शय उर्वीम् तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः विक्लवाः ताः ॥ ४० ॥

अन्वयः-तत्र नक्तम् रमणवसतिम् गच्छन्तीनाम् योषिताम् सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामिन्या उर्वीम् दर्शय तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः यतः ताः विक्लवाः सन्ति ॥ ४० ॥

अर्थः-उस उज्जैनीके विषय रात्रिमें प्रिय पुरुषके स्थानको जाती हुईं स्त्रियोंके घने अंधकारोंकरके रुक गया है प्रकाश जिसमें ऐसे राजमार्गमें सुवर्णकी कसौटीकी समान तेजवाली बिजली करके मार्गको दिखला वर्षा करने और गर्जनेसे शब्द करनेवाला मत हो क्योंकि वह स्त्रियें विकल हैं ॥ ४० ॥

१--यहां ' तोयोत्सर्गसहितं स्तनितम् ' ऐसा मध्यमपदलोपी समास हो सकता है और वृष्टिसहित गर्जना मत कर किन्तु केवल गर्जना कर ऐसा अर्थ हो जायगा, परन्तु वृष्टि और गर्जना दोनोंका निषेध करनेके निमित्त द्वन्द्वसमास किया है (तोयोत्सर्गश्च स्तनितं च--तोयोत्सर्गस्तनिते) यद्यपि द्वन्द्वसमास करनेसे (२ । २ । ३४) इस सूत्रके अनुसार स्तनितशब्दका पूर्वनिपात होना चाहिये परन्तु (३ । २ । १२६) इस सूत्रसे यह प्रतीत होता है पूर्वनिपात नित्य नहीं है।

२--यहां बिजलीके तेजसे कसौटीके तेजकी उपमा देनेका कारण यह है कि कसौटी काली होती है उसके ऊपर सुवर्ण घिसनेसे जैसी चमकती हुई रेखा हो जाती है वैसी प्रकार काले रंगवाले मेघपर बिजलीचमकनेसे शोभा होती है।

३--सामान्यतः " स्निग्ध " शब्द कोमलका वाचक है परन्तु--" स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि ॥ " इस शब्दार्णव कोषके प्रमाणानुसार यहां तेज अर्थका वाचक माना है।

भावार्थः—तदनन्तर उस उज्जैनीमें रात्रिके समय प्रिय पुरुषोंके मन्दिरोंको जानेवाली युवतियोंके अंधकारके कारण न दीखनेवाले राजमार्गमें सुवर्णमें कसौटीकी रेखाके समान तेरे अंगमें चमकनेवाली बिजलीसे मार्ग दिखला और मेघवर्षा तथा गर्जना करके उनको भयभीत मत कर; क्योंकि वे स्त्रियाँ उस समय कामसे पीडित रहेंगी ॥ ४० ॥

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ[1] सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ॥
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः[2] ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः—ताम् कस्यांचित् भवनवलभौ सुप्तपारावतायाम् नीत्वा रात्रिम् चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः दृष्टे सूर्ये पुनः अपि भवान् वाहयेत् अध्वशेषम् मन्दायन्ते न खलु सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायाम् कस्यांचित् भवनवलभौ ताम् रात्रिम् नीत्वा सूर्ये दृष्टे (सति) पुनरपि अध्वशेषम् वाहयेत् सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु ॥ ४१ ॥

अर्थः—बहुतकाल चमकनेसे श्रमको प्राप्त हुई है बिजलीरूपी स्त्री जिसकी ऐसा तूँ, सोए हैं कबूतर जिसमें ऐसी किसी घरकी वलभीमें उस रात्रिको बिताकर सूर्यके उदय होनेपर फिर बाकी मार्गको प्राप्त होना; क्योंकि, मित्रोंके इच्छित कार्योंको स्वीकार करनेवाले पुरुष मन्द नहीं होते हैं, यह निश्चय है ॥ ४१ ॥

१–किसी २ प्राचीन पुस्तकमें 'वडभौ' ऐसा पाठ देखनेमें आता है परन्तु लकार और डकारका वैयाकरणोंने भेद नहीं माना है इस कारण कोई विशेषता नहीं है । "आच्छादनं स्याद्वलभी गृहाणाम्।" इति हलायुधः।

२–'कृत्या' शब्द कार्यका वाचक है–"कृत्या क्रिया–देवतयोः कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु ।" इति यादवः ।

भावार्थः-चिरकाल विलास करनेसे थकी हुई बिजलीरूप स्त्रीके साथ उस नगरीमें कबूतरोंके रहनेके उपर सूने स्थानोंमें उस रात्रिको बिताकर सूर्योदय होनेके समय फिरभी शेष मार्गको जा क्योंकि जो पुरुष मित्रोंके कार्यको सिद्ध करते हैं वे कार्य करनेमें किसी प्रकार आलसी नही होते हैं ॥ ४१ ॥

तस्मिन्[1]काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः[2]
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कर[3]रुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः-तस्मिन् काले नयनसलिलम् योषिताम् खण्डितानाम् शान्तिम् नेयम् प्रणयिभिः अतः वर्त्म भानोः त्यज आशु प्रालेयास्रम् कमलवदनात् सः अपि हर्तुम् नलिन्याः प्रत्यावृत्तः त्वयि कररुधि स्यात् अनल्पाभ्यसूयः ॥ ४२ ॥

अन्वयः-तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानाम् योषिताम् नयनसलिलम् शान्तिम् नेयम् अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः (भविष्यति ततः) त्वयि कररुधि अनल्पाभ्यसूयः स्यात् ॥ ४२ ॥

१-सूर्योदय होनेके समय रात्रिमें बाहर गये व्यसनी पुरुष लौटकर घर आनेके समय अपना संग न होनेके कारण निराश हुई स्त्रियोंको समझाया करते हैं।

२-नलशब्द नपुंसकलिंग कमलका वाचक है। जैसे-"तृणेऽम्बुजे नलं ना तु राशि नालं तु न स्त्रियाम्।" इति शब्दार्णवः। नलानि अस्याः सन्तीति नलिनी-कमल जिसमें हो वह कहलाती है। यहां 'नलिनी' को सूर्यकी स्त्री माना है और कमलको मुख माना है और उसपर गिरनेवाली हिमकी बूंदोंको आँसूंकी कल्पना किया है, पतिके परदेश जानेपर उसकी स्त्री दुःखी और म्लानमुख होती है और घर आनेपर सुखी तथा हास्यमुखी होती है उसी प्रकार कमलिनीका सूर्यपतिके अस्त होनेपर कमलरूपी मुख कुम्हला जाता है और उदय होनेपर खिल जाता है और ओसकी बूंदेंभी नहीं रहती हैं ऐसी उत्प्रेक्षा की गई है।

३-यहाँ कर शब्दमें श्लेष है इसका अर्थ सूर्य और कमलिनीके पक्षमें किरण है और स्त्रीपुरुषके पक्षमें हाथ है।

अर्थः—उस सूर्योदयके समय पतियोंसे भंग हुई है आशा जिनकी, ऐसी स्त्रियोंके नेत्रोंका जल शान्तिको प्राप्त करना चाहिये, इस कारण सूर्यके मार्गको शीघ्र छोड़ो वह सूर्य भी कमलिनियोंके कमलरूपी मुखसे हिमरूपी नेत्रोंके जलको दूर करनेको लौटनेवाला होगा तिससे तेरी किरणोंको रोकनेपर अधिक द्वेष करनेवाला होगा४२॥

भावार्थः—रात्रिमें अन्यत्र गये पतियोंसे निराश होकर रुदन करती हुई स्त्रियोंके आंसुओंको सूर्योदयके समय पति आकर पोंछेंगे इस कारण तूँ सूर्यके मार्गको शीघ्र छोड । क्योंकि वह सूर्य उस समय नलिनीके कमलरूप मुखसे गिरते हुए हिमरूप आंसुओंको पोछनेके निमित्त आवेगा तब तू उसकी किरणोंको रोकना मत, यदि रोकेगा तो अत्यन्त द्वेष होगा ॥ ४२ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायाऽऽत्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यात्
मोघीकर्तु चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः—गम्भीरायाः पयसि सरितः चेतसि इव प्रसन्ने छायात्मा अपि प्रकृतिसुभगः लप्स्यते ते प्रवेशम् तस्मात् अस्याः कुमुदविशदानि अर्हसि त्वम् न धैर्यात् मोघीकर्तुम् चटुलशफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४३ ॥

अन्वयः—गम्भीरायाः सरितः चेतसीव प्रसन्ने पयसि प्रकृतिसुभगः छाया-

१ सूर्यसे द्वेष करनेपर अशुभ अर्थात् कार्यकी हानि होगी ऐसा जनाया है इस विषयमें प्रमाण—“ब्राह्मणं चार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जनः ।
श्रेयांसि तस्य नश्यन्ति रौरवं च भवेद्ध्रुवम् ॥ ”

२ संस्कृतभाषामें उपमेय शब्द और उपमान शब्दोंमें एकसी विभक्ति होती है ऐसा साधारण नियम है यहां, ‘प्रसन्ने पयसि’ यह उपमेय है और ‘चेतसि’ यह उपमान है ।

३ सामान्यतः सुभगशब्दका अर्थ भाग्यशाली है परन्तु—
“ सुन्दरेऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे । तुरीयांशे श्रीमति च ”
इस शब्दार्णवकोशके प्रमाणानुसार ‘सुभग’ शब्दका सुन्दर अर्थ किया है ।

त्मापि प्रवेशम् लप्स्यते तस्मात् अस्याः कुमुदविशदानि चटुलेशफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि धैर्यात् मोघीकर्तुम् त्वम् नार्हसि ॥ ४३ ॥

अर्कः-गम्भीरानदीके अन्तःकरणके समान निर्मल जलके ऊपर स्वभावसे सुन्दर तेरा प्रतिबिम्बरूपी शरीरही प्रवेशको प्राप्त होगा उस कारण इस गम्भीरा नदीके कुमुदके समान स्वच्छ शीघ्र मछलियोंके ऊपरको उछलनेरूप दृष्टियोंको धृष्टतासे निष्फल करनेको तूँ योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! अन्तःकरणको समान निर्मल गम्भीरानदीके जलमें तेरी प्रतिबिम्बरूपी देह पडेगी उस नदीके कुमुदोंके समान निर्मल मछलियोंके शीघ्र २ उछलनेरूपी दृष्टियोंकी ओर ध्यान न देकर धूर्ततासे[२] निष्फल नहीं करना चाहिये ॥ ४३ ॥

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां[३] को विहातुं समर्थः ॥ ४४॥

पदच्छेदः-तस्याः किंचित् करधृतम् इव प्राप्तवानीरशाखम् हृत्वा नीलम् सलिलवसनम् मुक्तरोधोनितम्बम् प्रस्थानम् ते कथम् अपि सखे लम्बमानस्य भावि ज्ञातास्वादः विवृतजघनाम् कः विहातुम् समर्थः ॥ ४४ ॥

अन्वयः-हे सखे ! प्राप्तवानीरशाखम् किंचित् करधृतमिव स्थितम् मुक्तरोधो-

---

१-" त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम् " इति विश्वः ।

२-धूर्तताका लक्षण-" क्लिश्नाति नित्यं गमितां कामिनीमिति सुन्दरः ।
" उपेत्यरक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुंचति ॥ "

३-मल्लिनाथको छोडकर बाकीके सम्पूर्ण टीकाकार ' विवृतजघनाम् ' इसकी जगह ' पुलिनजघनाम् ' ऐसा पाठ मानते हैं इसका अर्थ-" जलका दोनों ओर प्रवाह होनेपर मध्यकी जो भूमि होती है उसको पुलिन कहते हैं " पुलिनही है नितम्बस्थल जिसका ऐसी ।

नितम्बम् नीलम् तस्याः सलिलवसनम् हृत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथमपि भावि ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनाम् विहातुम् समर्थः स्यात् ॥ ४४ ॥

अर्थः-हे मित्र ! प्राप्त हुई है बेंतकी शाखा जिसको कुछ हाथसे पकडे हुएसे स्थित छोडा है तटरूपी नितम्ब जिसका, ऐसे नीलवर्ण उस गम्भीरानदीके जलरूप वस्त्रको हरण करके लम्बायमान होनेवाला जो तूँ, उसका जाना अतिकठिनसे होगा. जाना है स्वाद जिसने ऐसा कौनसा पुरुष उघडी हुई जंघावाली स्त्रीको त्याग करनेमें समर्थ होगा ? ॥ ४४॥

भावार्थः-हे मित्र ! दोनों ओर उगे हुए वेतोंकी शाखाओंसे मिला हुआ कुछ हाथ धरनेके समान दीखते हुए और जिसने तटरूपी कटिभागका त्याग किया है ऐसे काले वर्णवाले गम्भीरानदीके जलरूप वस्त्रको हरण करके "इसको छोडकर जाऊं या न जाऊं" इस प्रकारके विचारमें दोलायमान होनेवाला जो तूँ उस तुझको आगेको जानेमें बडा कष्ट होगा. क्योंकि शृंगार रसको जाननेवाला कौनसा पुरुष विलासवती स्त्रीको त्याग करनेमें समर्थ होगा ? अर्थात् कोई नहीं॥ ४४॥

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दंतिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४५ ॥

१-'नितम्ब' शब्द नदीके तटका और कटिभागका नाम है, जैसे—'नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ' इति यादवः ।

२-'देवपूर्वं गिरिम्' यह प्रयोग अलङ्कारशास्त्रज्ञ पुरुषोंके मतानुसार योग्य नहीं है क्योंकि यहां अवाच्यवचनरूप दोष है देव शब्द है पहिले जिसके ऐसे नामका पर्वत अर्थात् देवगिरि कविको अभीष्ट है और 'देवपूर्वं गिरिम्' इसका अर्थ-देव है पहिले जिसके ऐसा पर्वत । यहाँ देवगिरि यह संज्ञा है और पर्वत संज्ञी है और संज्ञाको संज्ञित्व कभी नहीं होता है इस कारण अवाच्यवचनदोष आता है सोही एकावली ग्रन्थमें कहा है— 'यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत्' मल्लिनाथने देवशब्द जिसका विशेषण है ऐसा गिरिशब्द, ऐसा देवगिरिका अर्थ करके समाधान किया है ।

पदच्छेदः—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् दंतिभिः पीयमानः नीचैः वास्यति उपजिगमिषोः देवपूर्वम् गिरिम् ते शीतः वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् दन्तिभिः पीयमानः काननोदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्वम् गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति ॥ ४५ ॥

अर्थः-तेरे वर्षा करनेसे उच्छ्वसित होनेवाली पृथ्वीके गन्धके संसर्गसे सुन्दर नासिकाके छिद्रोंके शब्दसे सुखकारक हस्तियोंसे पान की हुई वनके उदुम्बरफलोंको पकानेवाली शीतल वायु देवशब्द हैं पहिले जिसके ऐसे पर्वतको जानेकी इच्छा करनेवाले तेरो आगे हौले हौले चलेगी ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! तेरी जलकी वर्षासे शान्त होकर आनन्दकी सांस लेनेवाली पृथ्वीके गन्धसे वसी हुई और हस्तियोंने गन्धके लोभसे अपनी सूंडके अग्रभागमें उत्पन्न होनेवाले शब्दोंसे जिसका आनन्द स्वीकार किया है तथा जो जंगलके उदुम्बरफलोंको पकाने वाली है ऐसी उस नदीका शीतल वायु देवागिरिको जानेकी इच्छा करनेवाले तेरो आगे हौले हौले चलेगी ॥ ४५ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूनाम्
अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४६ ॥

पदच्छेदः—तत्र स्कन्दम् नियतवसतिम् पुष्पमेघीकृतात्मा पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगंगाजलार्द्रैः रक्षाहेतोः नवशशिभृता वासवीनाम्

१–'स्रोतस्' शब्द सामान्यतः नदीके प्रवाहका और इंद्रियका वाचक है परन्तु यहां प्रकृत अर्थके सम्बन्धसे नासिकाका वाचक है।

चमूनाम् अत्यादित्यम् हुतवहमुखे सम्भृतम् तत् हि तेजः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—तत्र नियतवसतिं स्कन्दम् पुष्पमेघीकृतात्मा (सन्) व्योमगंगाजलार्द्रैः पुष्पासारैः भवान् स्नपयतु तत् वासवीनाम् चमूनाम् रक्षाहेतोः नवशशिभृता हुतवहमुखे सम्भृतम् अत्यादित्यम् तेजः हि ॥ ४६ ॥

अर्थः—उस देवगिरि पर्वतके ऊपर निरन्तर निवास करनेवाले स्वामी कार्तिकेयको पुष्पोंकी वर्षा करनेवाले मेघके समान की है देह जिसने ऐसा होके आकाशगंगाके जलोंसे भीजे हुए पुष्पोंकी वर्षाओंसे तू स्नान करा, वह इन्द्रकी सेनाओंकी रक्षा करनेके लिये देवताओंको हव्य पहुंचानेवाली अग्निके मुखमें धारण किया हुआ सूर्यकोभी अतिक्रमण करनेवाला तेज है यह निश्चय है ॥ ४६ ॥

भावार्थः—उस देवगिरि पर्वतपर पहुंचकर तूँ अपनी इच्छाके अनुसार अपने शरीरको पुष्पोंकी वर्षाकरनेवाला बनाकर उस पर्वतपर

१–" स्वामी कार्तिकेयकी उत्पत्ति अग्निसे हुई है ऐसा स्कन्दपुराणमें कहा है, पूर्वकालमें तारकासुरसे इन्द्रका युद्ध हुआ था तब इन्द्रका योग्य सेनापति न होनेके कारण पराजय हो गई तब इन्द्र शिवजीकी शरण गया शिवजीने प्रसन्न होकर सेनापति पुत्र उत्पन्न होनेके अर्थ पार्वतीसे सम्भोग किया तब अग्निने पक्षिरूपसे जाकर उनका वीर्य भक्षण करलिया उससे स्वामी कार्तिकेय उत्पन्न हुए यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। "

२–मेघ इन्द्रका प्रधानपुरुष है इस प्रकार छठे श्लोकमें लिख चुके हैं, और स्वामी कार्तिकेयका अवतार इन्द्रकी रक्षाके निमित्त हुआ है इस कारण स्वामी कार्तिकेय मेघके पूज्य हैं उस कारण ' पुष्पाभिषेक कर ' ऐसा यक्षने सूचित किया।

३–अलग अलग देवताओंके उद्देशसे अग्निमें हवन करनेसे उन उन देवताओंको अग्नि पहुंचा देती है ऐसा ऋग्वेदके पहिलेही मन्त्रमें कहा है।

४–यहां मुखमें ऐसा कहा है इससे विशेष पवित्रता दिखलाई क्योंकि अग्निका मुख विशेष पवित्र होता है इस विषयमें शंभुरहस्यग्रन्थमें कहा है–

" गवां पश्चात् द्विजस्यांघ्रिर्योगिनां हृत्कवेर्वचः।
परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्री–वह्नि–वाजिनाम् ॥ "

अर्थात् गौके पीछेका भाग, ब्राह्मणके चरण, योगियोंका हृदय, कवियोंकी वाणी स्त्रीका अग्निका और घोडेका मुख पवित्र होता है।

सदा रहनेवाले स्वामी कार्तिकेयको भागीरथीके पवित्र जलोंसे भीगे हुए पुष्पोंकी वर्षासे स्नान करा, यदि कहो कि स्वामी कार्तिकेय कौन हैं ? तो सुन-इन्द्रकी सेनाकी रक्षा करनेके निमित्त शिवजीसे अग्निके मुखमें रखा हुआ " स्वतःसिद्ध " सूर्यकी अपेक्षा अधिक प्रकाशवान् तेजःस्वरूप है ॥ ४६ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः-ज्योतिर्लेखावलयि गलितम् यस्य बर्हम् भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलदलप्रापि कर्णे करोति धौतापाङ्गम् हरशशिरुचा पावके: तम् मयूरम् पश्चात् अद्रिग्रहणगुरुभि: गर्जितैः नर्त्तयेथाः ॥ ४७ ॥

अन्वयः-ज्योतिर्लेखावलयि गलितम् यस्य बर्हम् भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति तम् हरशशिरुचा धौतापांगम् पावके: मयूरम् पश्चात् अद्रिग्रहणगुरुभि: गर्जितैः (त्वम्) नर्त्तयेथाः ॥ ४७ ॥

अर्थः-तेजकी पंक्तिके मंडलवाली गिरी हुई जिस मोरकी पूंछके भागको पार्वती पुत्रके प्रेमसे कमलके पत्तेको प्राप्त होनेवाले कर्णमें धारण करती हैं उस शिवजीके चन्द्रमाकी कान्तिसे स्वच्छ हुए हैं नेत्रोंके कोने जिसके ऐसे अग्निके पुत्र (स्वामी कार्तिकेय) के मयूरको पीछेसे पर्वतको ग्रहण करनेके समान भारी गर्जनाशब्दोंसे तूँ नृत्य करा ॥ ४७ ॥

भावार्थः-उस पुष्पाभिषेक करनेके अनन्तर अत्यन्त प्रकाशवान् और आप गिरनेवाले जिसके पिच्छको पार्वती पुत्रके प्रेमसे कानोंमें कमलपत्रको त्यागकर उसके स्थानमें धारण करती हैं और

१-' कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ' अर्थात् कमलपत्रोंके धोरे धारण करती हैं अथवा कमलपत्रके धारण करने योग्य कर्णमें धारण करती हैं अथवा कमलपत्रोंको दूर करके उसके स्थानमें मोरके पंखोंको धारण करती हैं ।

जिसके नेत्रोंके कोने शिवजीके मस्तकपर स्थित चंद्रमाकी कान्तिसे शुभ्र हो रहे हैं, उस स्वामी कार्तिकेयके मोरसे पर्वतोंकी गुफाओंमें भरनेसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले गर्जनशब्दोंके द्वारा नृत्य करा ॥४७॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लंघिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ॥
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥४८॥

पदच्छेदः—आराध्य एनम् शरवणभवम् देवम् उल्लंघिताध्वा सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् वीणिभिः मुक्तमार्गः व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजाम् मानयिष्यन् स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—एनं शरवणभवम् देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः उल्लंघिताध्वा त्वम् सुरभितनयालम्भजाम् भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः ॥ ४८ ॥

१—" प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, पक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर और पीयूष" इन शब्दोंसे समास होनेपर वनशब्दके नकारको णकार हो जाता है संस्कृतमें ऐसा नियम है। 'शरवणं भवो यस्य' इस प्रकार बहुव्रीहिसमास किया है सो योग्य नहीं तथापि 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' अर्थात् जन्मादिशब्द जिसके उत्तरपद हों ऐसा बहुव्रीहि अवर्ज्य है अर्थात् अन्य किसी रीतिसे कार्य न हो तो व्यधिकरण बहुव्रीहिका कार्य करना चाहिये ऐसा वामन आचार्यका मत है, स्वामी कार्तिकेयको शरोंके समूहसे उत्पत्ति हुई है यह कथा महाभारतके वनपर्वमें विस्तारपूर्वक वर्णित है।

२—विन्ध्याचलके उत्तरमें दशपुरनामवाली राजधानी है, उसका राजा रन्तिदेव था, उसने गोसवादि अनेक यज्ञ करके बडी कीर्त्ति पैदा की थी, उन यज्ञोंमें उसने गौ आदि इतने पशु मारे थे कि उनकी चर्मोंका जो ढेर लगा था उनमेंसे चू चूकर निकले हुए द्रवकी नदी हो गई, वह चर्म्मोंसे निकली इस कारण उसका नाम 'चर्मण्वती' हुआ, यह कथा महाभारतके द्रोणपर्वमें वर्णित है । आजकल उस नदीको चँबल कहते हैं गोसव नामक यज्ञमें गौ मारनेकी रीति पहले युगोंमें श्रुति-स्मृतिसंमत थी आजकल कलियुगमें उसका निषेध है।

अर्थः-इन शरोंके वनसे उत्पन्न होनेवाले देवको आराधना करके वीणाओंको धारण करनेवाले सिद्धनामवाले स्त्रीपुरुषोंसे जलकी बिन्दुओंके भयसे छोडा गया है मार्ग जिसका ऐसा होकर मार्गको उल्लंघन करनेवाला तूँ, कामधेनुकी पुत्रियोंको यज्ञमें मारनेसे होनेवाली- पृथ्वीके ऊपर नदीरूपसे रूपविशेष पानेवाली रन्तिदेवराजाकी कीर्तिको सम्मान करता हुआ उतर ॥ ४८ ॥

भावार्थः-शरोंमें जिनका जन्म हुआ है ऐसे स्वामी कार्तिकेय देवकी पूर्वोक्त रीतिसे आराधना करके थोडासा मार्ग व्यतीत कर आगे जाकर वीणा बजाकर गानेवाले सिद्धनामक देवयोनिके जोडे तेरे वर्षा करनेपर भीजनेके डरसे अपनी २ वीणाओंको लेकर भागेंगे तदनन्तर उस मार्गको व्यतीत करके यज्ञके गोवधसे उत्पन्न होनेवाली और पृथ्वीपर नदीरूपसे प्रसिद्ध रन्तिदेवराजाकी कीर्त्तिको अर्थात् " चर्मण्वती " नदीको सत्कार करता हुआ तूँ नीचेको उतर ॥४८॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४९॥

पदच्छेदः-त्वयि आदातुम् जलम् अवनते शार्ङ्गिणः वर्णचौरे तस्याः सिन्धोः पृथुम् अपि तनुम् दूरभावात् प्रवाहम् प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयः नूनम् आवर्ज्य दृष्टीः एकम् मुक्तागुणम् इव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः-शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते सति पृथुम् अपि दूरभावात् तनुम् (प्रतीयमानम्) तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् गगनगतयः दृष्टीः आवर्ज्य स्थूलमध्येन्द्रनीलम् एकम् भुवः मुक्तागुणम् इव नूनम् प्रेक्षिष्यन्ते ॥ ४९ ॥

अर्थः-विष्णुभगवान्‌की कान्तिको चुरानेवाले तेरे जलको ग्रहण करनेके निमित्त नीचेको उतरनेपर बडेकोभी दूर होनेके कारण छोटा

प्रतीत होते हुए उस चर्मण्वतीनदीके प्रवाहको आकाशमें फिरनेवाले देवगन्धर्वादि, दृष्टियोंको लगाकर मध्यमें है बडा नीलमणि जिसके ऐसे अद्वितीय पृथ्वीके मोतियोंके हारके समान तुझे निश्चय करके देखेंगे ॥ ४९ ॥

भावार्थः—श्रीकृष्णकी देहके समान नीलवर्ण तूं जलपान करनेके निमित्त नीचेको उतरेगा तब चौडा होनेपरभी दूर होनेके कारण सूक्ष्म दीखते हुए उस चर्मण्वतीनदीके प्रवाहमें तेरा श्यामवर्ण शरीर शोभाको प्राप्त होगा तब " पृथ्वीके गलेके मोतियोंके हारके बीचमें गुथा हुआ बडा इन्द्रनील मणि है " इस प्रकार भ्रान्तिसे स्वर्गके देव-गन्धर्वादि तुझे दृष्टि लगाकर देखेंगे ॥ ४९ ॥

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बम्
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ५० ॥

पदच्छेदः—ताम् उत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् आत्मबिम्बम् पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—ताम् उत्तीर्य परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरि-

---

१—चर्मण्वतीनदीके प्रवाहमें पृथ्वीके गलेके मोतियोंके हारकी और मेघमें इन्द्रनीलमणिकी उत्प्रेक्षा की है अर्थात् यहां उत्प्रेक्षालंकार है ऐसा इवशब्दसे प्रतीत होता है क्योंकि ' तत्र तत्रोपमा यत्र इवशब्दस्य दर्शनम् ' । अर्थात् जहां २ इव शब्द देखनेमें आता है वहां २ उपमालंकार होता है ऐसा निरुक्तिकार कहते हैं परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है क्योंकि वामननामक आचार्यने उत्प्रेक्षाव्यंजक अन्य शब्द कहकर ऐसा कहा है कि—' इव शब्दोऽपि तादृशः ' इवशब्दभी उत्प्रेक्षाव्यंजक है ।

२ ' कृष्णरक्तसिताः शाराः ' इति यादवः ।

विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् दशपुरवधूनेत्रकौतूहला-नाम् आत्मबिम्बम् पात्रीकुर्वन् व्रज ॥ ५० ॥

अर्थः—उस चर्मण्वतीनदीको उतरकर सुन्दर हैं भ्रूरूपी लताओंके विलास जिनमें ऐसे, पलकोंके ऊपरको होनेसे ऊपर शोभाको प्राप्त हो रही है कृष्णवर्ण और ताम्रवर्ण कान्ति जिनमें ऐसे, इधर उधरको हिलते हुए कुन्दके पुष्पोंके पीछे जानेवाले भौरोंकी शोभाको चुराने-वाले दशपुरकी स्त्रियोंके नेत्रोंकी इच्छाओंका अपने बिम्बको पात्र करता हुआ जा ॥ ५० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! उस चर्मण्वतीनदीको पार उतरकर आगेको जाकर अधिक है भ्रूविलास जिनमें और पलकोंके चलानेपर काले, ताम्रवर्ण और पाण्डुवर्ण रंगोंसे शोभायमान इधर उधर हिलते हुए कुंदके पुष्पोंपर गुंजार करनेवाले भौंरोंकी शोभा हरनेवाले रन्तिदेव राजाके दशपुरनगरमें स्त्रियोंके अभिलाषायुक्त कटाक्षोंका अपने शरीरको पात्र करके आगेको गमन कर ॥ ५० ॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ॥
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः—ब्रह्मावर्त्तम् जनपदम् अथ छायया गाहमानः क्षेत्रम् क्षत्रप्रधनपि-शुनम् कौरवम् तत् भजेथाः राजन्यानाम् सितशरशतैः यत्र गाण्डीवधन्वा धारापातैः त्वम् इव कमलानि अभ्यवर्षत् मुखानि ॥ ५१ ॥

१-कुन्दके पुष्पपर बैठनेवाले भौंरोंकी उपमा नेत्रकटाक्षोंसे दी गई है, इसका कारण यह है कि भौंरोंका रंग काला होता है और कुन्दके पुष्पमें कहीं पाण्डुर और कहीं ताम्रवर्ण होता है वैसाही रंग नेत्रोंमेंभी होता है।

अन्वयः-अथ ब्रह्मावर्तम् जनपदम् छायया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनम् तत् कौरवम् क्षेत्रम् भजेथाः यत्र गाण्डीवधन्वा सितशरशतैः राजन्यानाम् मुखानि धारापातैः कमलानि त्वम् इव अभ्यवर्षत् ॥ ५१ ॥

अर्थः-इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त नामवाले देशको छायासे प्रवेश करता हुआ क्षत्रियोंके युद्धको जतानेवाले कुरुवंशियोंके स्थानको गमन कर, जिस स्थानमें गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनने सैकडों तीखे बाणोंसे क्षत्रियोंके मुखोंपर मेघकी धाराओंसे कमलोंपर तेरे जैसे वर्षा कीथी ॥ ५१ ॥

भावार्थः-फिर ब्रह्मावर्तदेशमें छायारूपसे प्रवेश करता हुआ कौरवोंके युद्धस्थान कुरुक्षेत्रमें गमन कर, उस कुरुक्षेत्रमें जैसे तूँ कमलोंपर सैकडों जलधाराओंकी वर्षा करता है उसी प्रकार अर्जुनने गाण्डीव धनुष धारण करके सम्मुख आये हुए राजाओंके शरीरोंपर सैकडों तीखे बाणोंकी वर्षा करके शिरश्छेदन किये थे ॥ ५१ ॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ॥
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य ! सारस्वतीनाम्
अन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५२ ॥

१-आजकल ब्रह्मावर्त्तनामसे प्रसिद्ध स्थान पूर्वकालमेंभी ब्रह्मावर्त नामसेही प्रसिद्ध था इस विषयमें मनुजीने कहा है कि-' सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ' ॥
सरस्वती और दृषद्वती इन दोनों देवनदियोंके मध्यमें जो देवताओंका निर्माण किया हुआ देश है उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं ।

२-यहां ऐसा कहा है कि, छायारूपसे प्रवेश कर, उसका कारण यह है कि—
' पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत् '
मार्गमें पडनेवाले सिद्धपीठ पुण्यक्षेत्र और आश्रम इत्यादि पवित्र स्थलोंको उलंघन करके जाना होय तो परिक्रमण करके जाय, प्रवेश नहीं करे, यदि प्रवेश करे तो तीन रात्रि वास करके आगेको जाय ऐसा धर्मशास्त्रका वचन है ।

पदच्छेदः-हित्वा हालाम् अभिमतरसाम् रेवतीलोचनाङ्काम् बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली याः सिषेवे कृत्वा तासाम् अभिगमम् अपाम् सौम्य! सारस्वतीनाम् अन्तःशुद्धः त्वम् अपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५२ ॥

अन्वयः-बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली अभिमतरसाम् रेवतीलोचनाङ्काम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे हे सौम्य! तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अभिगमम् कृत्वा वर्णमात्रेण कृष्णः अपि त्वम् अन्तःशुद्धः भविता ॥ ५२ ॥

अर्थः-कौरवपाण्डवोंके प्रेमसे युद्ध करनेमें उदासीन बलरामने यथेष्ट स्वादवाली रेवतीके नेत्रोंका है चिह्न जिसमें ऐसी मदिराको छोडकर जिनका सेवन किया हे सौम्य! उन सरस्वती जलोंकी सेवाको करके केवल वर्णसे काले वर्णवाले भी तुम भीतरस शुद्ध होओगे ॥ ५२ ॥

भावार्थः-हे सौम्य मेघ! केवल पाण्डव और कौरवोंपर समान स्नेह करनेके कारण मध्यस्थपना स्वीकार करके किसी पक्षमेंभी होकर युद्धमें सामिल न होनेवाले बलदेवजीने अपनी परमप्रिय रेवतीके नेत्रों के चिह्नोंवाली मदिराको त्यागकर जिन जलोंका सेवन किया था उन

१-कौरव और पांडवोंका परस्पर भ्रातृसम्बन्ध था और वह सब बलरामके फुफेरे भाई थे और सम्बन्धके सिवाय दुर्योधन गदायुद्धके सीखनेमें बलरामका शिष्य भी था इस प्रकार बान्धवसम्बन्ध था परन्तु जब परस्परमें कौरव पाण्डवोंका युद्ध उपस्थित हुआ तब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके सहायक हुए परन्तु बलदेवजी टालटूल करके किसी पक्षमें न मिले उदासीन होकर तीर्थयात्राके मिषसे चले गये यह कथा महाभारतके उद्योगपर्वमें वर्णित है ।

२-बहुत पूर्वकालमें प्रथम सत्ययुगमें रेवत नामवाला राजा था उसको रेवती नामवाली अत्यन्त रूपवती पुत्री थी उसके योग्य पति नहीं मिला तब पुत्रीको साथ लेकर राजा ब्रह्माजीके समीप गया वहां गान हो रहा था, गानके थमनेपर राजाने प्रणाम कर प्रश्न किया तब ब्रह्माजी हँसकर बोले कि हे राजन्! तू दो घडीसे आया है परन्तु यह दो घडी हमारी है परन्तु मनुष्योंके समयके नियमानुसार इतनी देरमें अट्ठाईस युग बीत गये सो अब तू जा पृथ्वीपर शेषजीने बलराम नामसे अवतार लिया है वह तेरी पुत्रीके वर होनेके योग्य हैं उनहीको दे इस बातको सुनकर राजा चला आया बलरामको रेवती पुत्री दे दी और अपने आप तप करने चला गया यह कथा भागवतके नवमस्कन्धमें वर्णित है ।

सरस्वतीके जलोंको सेवन करके तूं यद्यपि रंगसे काला है तथापि अंतर्यामी शुद्ध हो जायगा ॥ ५२ ॥

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ॥
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५३ ॥

पदच्छेदः—तस्मात् गच्छेः अनुकनखलम् शैलराजावतीर्णाम् जह्नोः कन्याम् सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम या विहस्य इव फेनैः शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् इन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५३ ॥

अन्वयः—तस्मात् अनुकनखलम् शैलराजावतीर्णाम् सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छेः गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम् फेनैः या विहस्येव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् ॥ ५३ ॥

१–यहां मल्लिनाथने ' शैलराज ' शब्दका हिमालय अर्थ किया है हमनेभी उसीका अनुसरण किया परन्तु पुराणान्तरोंमें इससे विरुद्ध वर्णन किया है कि मेरुपर्वतपर प्रथम गंगा वैकुण्ठसे गिरी और वहांसे चार भाग होकर चारों दिशाओंमें चली गई उसमेंसे एक भाग हिमालयपर होकर भरतखण्डमें आया यह कथा भागवतके पंचमस्कन्धमें देखो ।

२–पूर्वकालमें सागरनामवाला राजा हुआ था । उसके साठ हजार पुत्र थे । उसने अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया, परन्तु बीचमें इन्द्रने घोडा चुराकर कपिलके समीप बांध लिया, सगरके पुत्र घोडेको ढूंढते २ कपिलके आश्रममें गये और वहां कपिलको चोर कहा, तब कपिलने अपनी क्रोधदृष्टिसे उन्हें भस्म कर दिया उनका उद्धार करनेके निमित्त सागरके वंशमें भगीरथने बडा तप किया तब स्वर्गसे गंगा नीचको आई तब उन साठों हजार का उद्धार हुआ यह कथा भागवके नवमस्कन्धमें है सगर-राजके पुत्रोंके स्वर्गजानेके कारण यहां उस भागीरथीको " स्वर्गसोपानपंक्ति " यह विशेषण दिया ।

३–गंगा शिवजीकी दूसरी स्त्री है ऐसा माना है इस कारण पार्वतीके सपत्नीपनेकी ह्रिर्षसे गंगाने उसके शृंगारका हास्य किया यह कविने कल्पना की है यहां गंगाके झागोंपर हास्यकी उत्प्रेक्षा है ।

अर्थः-उस कुरुक्षेत्रसे कनखलके समीप हिमालयसे नीचेको उतरी हुई सगरके पुत्रोंके स्वर्गकी सीढ़ीकी पंक्ति जह्नुकी कन्या गंगाको प्राप्त हो। जो पार्वतीके मुखकी भ्रुकुटियोंकी रचनाको झागोंके द्वारा हंसी करके मानो चन्द्रमाको लगा है तरंगरूप हाथ जिसका ऐसी होकर शिवजीके केशग्रहोंको करती हुई ॥ ५३ ॥

भावार्थः-उस कुरुक्षेत्रसे चलकर कनखल नामक पर्वतके समीप हिमाचलसे नीचेको उतरती हुई और जो सगरराजाके पुत्रोंको स्वर्ग ले जानेके निमित्त सोपानकी पंक्ति बनी थी ऐसी जह्नुराजकी पुत्री जो श्रीभागीरथी उसको प्राप्त हो। जिस भागीरथीने पार्वतीके मुखकी रचनाको देखकर अपने झागोंसे मानो हंसी की और अपनी तरंगरूप हाथ शिवजीके मस्तकके चन्द्रमाको लगाकर शिवजीके केशोंको ग्रहण किया था अर्थात् जो शिवजीकी जटाओंमें जाकर निवास करती हुई ॥ ५३ ॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ॥
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५४ ॥

पदच्छेदः-तस्याः पातुम् सुरगजः इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी त्वम् चेत् अच्छस्फटिकविशदम् तर्कयेः तिर्यक् अम्भः संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि छायया असौ स्यात् अस्थानोपगतयमुनासंगमा इव अभिरामा ॥ ५४ ॥

अन्वयः-सुरगजः इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी स्थित्वा अच्छस्फटिकविशदम् तस्याः अम्भः तिर्यक् पातुम् त्वम् तर्कयेश्चेत् सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया असौ अस्थानोपगतयमुनासंगमेव अभिरामा स्यात् ॥ ५४ ॥

अर्थः-दिग्गजके समान आकाशमें पीछेके आधे भागसे लम्बायमान स्थित होकर स्वच्छ स्फटिकमणिके समान सफेद उस गंगाका जल तिरछा होकर पीनेको तूँ विचार करेगा तो शीघ्रही प्रवाहमें

प्रतिबिम्बित होती तेरी छाया से यह भागीरथी प्रयागसे अन्यत्रभी यमुनानदीसे मिली हुईसी शोभावाली होगी ॥ ५४ ॥

भावार्थः-दिग्गजके समान आकाशके मध्यमें आधे शरीरसे नीचेको झुकता हुआ तिरछा होकर स्फटिकमणिके समान श्वेत जलको पान करनेको जब तूँ विचार करेगा तब प्रवाहके बीचमे पडे हुए तेरे प्रतिबिम्बसे प्रयागके विनाभी गंगा, यमुनासे मिली हुईसी शोभायमान होगी ॥ ५४ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणाम्
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ॥
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः—आसीनानाम् सुरभितशिलम् नाभिगन्धैः मृगाणाम् तस्याः एव प्रभवम् अचलम् प्राप्य गौरम् तुषारैः वक्ष्यसि अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः शोभाम् शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—आसीनानाम् मृगाणाम् नाभिगन्धैः सुरभितशिलम् तस्याः एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यासि ॥ ५५ ॥

१—भागीरथीका जल श्वेत और यमुनाका कृष्णवर्ण होता है उस गंगा और यमुनाका संगम प्रयागमें प्रसिद्ध है यहां मेघका कृष्णवर्ण प्रतिबिम्ब गंगामें यमुनाके जलके समान दीखेगा तब प्रयागके विनाभी गंगा यमुनाका संगमसा प्रतीत होगा ।

२—कस्तूरी मृगकी नाभिसे उत्पन्न होती है उसको मृगनाभि और नाभिभी कहते है, सोही अमरसिंहने कहा है-" मृगनाभिर्मृगमदः " इत्यमरः ।

३—यहां शिवजीके वृषका उपमा हिमालयसे दी है क्योंकि बैलका रंग श्वेत होता है और बैलके सींगोंसे उछलकर देहपर पडी हुई कीचके दाग काले होते हैं उसी प्रकार बर्फसे श्वेत जो हिमालय उसपर काला मेघ जाकर स्थित हुआ तब उस पर्वतकी शिवजीके नन्दिगणके समान शोभा हुई ।

अर्थः-बैठे हुए मृगोंकी नाभिकी गंधोंसे सुगन्धित हैं शिलायें जिसमें ऐसे उस गंगाकेही उत्पत्तिस्थान हिमके समूहोंसे गौरवर्ण हिमालयके शिखरपर बैठा हुआ, शिवजीके श्वेतवर्ण वृषभ से उखाडी हुई कीचकी सदृश शोभाको धारण करेगा ॥ ५५ ॥

भावार्थः-जिसके ऊपर शिलायें कस्तूरीमृगोंके बैठनेसे सुगंधित हैं ऐसा, और उस गंगाका जन्मस्थान तथा बर्फके कारण श्वेतवर्ण उस हिमालय पर्वतपर पहुंचकर उसके मार्गका परिश्रम दूर करनेवाले शिखरपर विश्राम करता हुआ शिवजीके वृषभ से उखाडी हुई कीचकी उपमा देने योग्य शोभाको धारण करेगा ॥ ५५ ॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ॥
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रैः
आपन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५६ ॥

पदच्छेदः-तम् चेत् वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा बाधेत उल्काक्षपितचमरीबालभारः दवाग्निः अर्हसि एनम् शमयितुम् अलम् वारिधारासहस्रैः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदः हि उत्तमानाम् ॥ ५६ ॥

अन्वयः-वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीबालभारः दवाग्निः चेत् तम् बाधेत तर्हि एनम् वारिधारासहस्रैः शमयितुम् त्वम् अर्हसि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नार्त्तिप्रशमनफलाः भवन्ति ॥ ५६ ॥

अर्थः-वायुके चलनेपर देवदारु वृक्षोंके डालोंके घिसनेसे उत्पन्न हुई चिनगारियोंसे चँवरवाली गौओंके बालोंको नष्ट करनेवाली वनकी दावाग्नि यदि उस हिमालयको पीडा देगी तो इस दावाग्निको जलकी हजारों धारोंसे शान्त करनेको तूं योग्य है। श्रेष्ठपुरुषोंकी

१-" सरलस्कन्धसंघट्टात् जन्म यस्य " ऐसा बहुव्रीहिसमास होता है सो व्यधिकरण है तथापि जन्मपद उत्तर होनेके कारण साधु है, इस विषयमें ४९ वें श्लोककी टिप्पणी देखो।

सम्पत्तियाँ, आपत्तियुक्त पुरुषोंकी पीडा हरनाही है फल जिनका ऐसी होती हैं ॥ ५६ ॥

भावार्थः—जब वायु चलेगी तो देवदारु वृक्षोंकी डालोंके परस्पर घिसनेसे उत्पन्न होनेवाली जो अग्नि अपनी लपटोंसे वनगौओंके अंगोंके केशोंको जलानेवाली होगी, वह अग्नि यदि हिमालयको पीडा दे तो तूँ अपनी हजारों जलकी धारोंसें उसको शान्त करना क्योंकि सत्पुरुषोंकी सम्पत्तियाँ दुःखित पुरुषोंकी पीडाहरनेसेही सफल होती हैं ॥ ५६ ॥

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लंघयेयुर्भवन्तम् ॥
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५७ ॥

पदच्छेदः—ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन् मुक्ताध्वानम् सपदि शरभाः लंघयेयुः भवन्तम् तान् कुर्वीथाः तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् के वा न स्युः परिभवपदम् निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५७ ॥

१—भरत सनातन रामनाथ और हरिगोविन्द ये चारों टीकाकार इस श्लोकके पहले तीन पादोंमें आगे लिखे अनुसार पाठभेद मानते हैं—

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभगाय तस्मिन् ।
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलंध्यम् ॥
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान् ।

अन्वयः—तस्मिन् (हिमाद्रौ), ये शरभाः मुक्तध्वनिम्, अलंध्यम्, त्वाम्, दर्पोत्सेकात्, असहनाः, सन्तः स्वांगभंगाय, उपरि लंघयिष्यन्ति, तान् तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्, कुर्वीथाः ।

अर्थः—उस हिमालयपर गर्जनेवाले और अलंध्य तुझको गर्वकी अधिकतासे न सहनेवाले शरभमृग अपने शरीरको नष्ट करनेके लिये उडकर प्रहार करेंगे उनको तूँ ओलोंकी वर्षारूप हँसीसे लज्जित कर

अन्वयः-तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभा[1] मुक्ताध्वानम् भवन्तम् सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लंघयेयुः तान् तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् कुर्वीथाः निष्फलारम्भयत्नाः के परिभवपदम् न स्युः॥ ५७॥

अर्थः-उस हिमालयपर उत्साहपूर्वक उडनेमें है वेग जिनको ऐसे जो शरभ नामवाले मृग मार्गको अतिक्रमण करनेवाले तुझको शीघ्रही अपने शरीरको नष्ट करनेके निमित्त उल्लंघन करेंगे उनको ओलोंकी बडी वर्षासे व्याप्त कर। निष्फल आरम्भमें यत्न करनेवाले कौन तिरस्कारको नहीं प्राप्त होयँगे ॥ ५७ ॥

भावार्थः-उस हिमालय पर्वतपर बडे वेगसे उडकर प्रहार करनेवाले शरभमृग केवल दुःख पानाही है फल जिसका तेरे पराभव करनेकी ऐसे इच्छासे तुझपर प्रहार करेंगे तो तूँ उनपर ओलोंकी वर्षाकी मार देना। क्योंकि निष्फल कार्य आरम्भ करनेवाले कौन पुरुष तिरस्कारके पात्र नहीं होते हैं ? ॥ ५७ ॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः।
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५८ ॥

पदच्छेदः-तत्र व्यक्तम् दृषदि चरणन्यासम् अर्द्धेन्दुमौलेः शश्वत् सिद्धैः उपचितबलिम् भक्तिनम्रः परीयाः यस्मिन् दृष्टे करणविगमात् ऊर्ध्वम् उद्धूतपापाः संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः॥ ५८॥

अन्वयः-तत्र दृषदि व्यक्तम् शश्वत् सिद्धैः उपचितबलिम् अर्धेन्दुमौलेः

१-" शरभ " एक आठ चरणवाले पशुका नाम है ऐसा प्राचीन ग्रन्थोंमें है इस विषयमें विश्वकोशमें-इसका और हाथीका स्वाभाविक वैर है ऐसा माना है। " शरभः शलभे चाष्टपदे प्रोक्तो मृगान्तरे "। आकाशमें काले मेघको देखकर हस्तीके भ्रमसे तेरा तिरस्कार करनेको तैयार होंगे ऐसा यहां वर्णन किया है।

चरणन्यासम भक्तिनम्रः सन परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः पुरुषाः करणविगमात् ऊर्ध्वं स्थिरगणपदप्राप्तये संकल्पन्ते ॥ ५८ ॥

अर्थः–उस हिमालयमें शिलापर स्पष्ट निरन्तर योगाभ्यास करनेवालोंसे अर्पण की गयी है पूजा जिसकी ऐसे शिवजीके चरणोंके न्यासको भक्तिसे नम्र होकर प्रदक्षिणा कर, जिस चरणन्यासके देखने-पर पापरहित होकर श्रद्धावान् पुरुष देहत्यागके अनन्तर अविनाशी गणोंके पद प्राप्त होनेके लिये समर्थ होते हैं ॥ ५८ ॥

भावार्थः–योगाभ्यासमें लगे हुए सिद्धलोग सदा जिसकी पूजा करते हैं ऐसे हिमालयकी किसी शिलापर लगे हुए शिवजीके चरणके चिह्नको भक्तिसे नम्र होकर प्रदक्षिणा कर । जिस शिवजीके चरणके दर्शन करनेवाले प्रेमी जन पापोंसे छूटकर मरणके अनन्तर अविनाशी शिवगणोंके स्थान अर्थात् कैलासको प्राप्त होनेके योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ॥
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कंदरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ५९ ॥

पदच्छेदः–शब्दायन्ते मधुरम् अनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः संसक्ताभिः त्रिपुरविजयः गीयते किन्नरीभिः निर्ह्रादः ते मुरजे इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात् सङ्गीतार्थः ननु पशुपतेः तत्र भावी समग्रः ॥ ५९ ॥

अन्वयः(हे मेघ !) अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरम् शब्दायन्ते च

१–" करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेषु च " इस अमरकोशके प्रमाणानुसार करण शरीरका नाम है ।

२–जो बांस वायुसे भरके बजने लगते हैं उनको कीचक कहते हैं जैसे–"वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः " । इत्यमरः ।

संसक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते कन्दरेषु ते निर्ह्रादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् तर्हि तत्र पशुपतेः संगीतार्थः समग्रः ननु भावी ॥ ५९ ॥

अर्थः-(हे मेघ !) पवनोंसे भरेहुए कीचक (बांस) मधुर शब्द करेंगे और आसक्त हुई किन्नरियोंके द्वारा त्रिपुरविजय गान किया जायगा गुफाओंमें तेरा शब्द मृदंगकी ध्वनिके समान होगा तब वहां शिवजीकी संगीतका प्रयोजन अवश्य सम्पूर्ण हो जायगा ॥ ५९ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! उन शिवजीकी पादुकाओंके समीप पवनसे भरे हुए वेणु मधुर शब्द करेंगे और शिवकी भक्ति करनेमें आसक्त किन्नरियाँ त्रिपुरविजय गान करेंगी तब यदि गुफाओंमें तेरा शब्द मृदंगके शब्दको समान होगा तो वहां शिवजीका बाजासहित सुन्दर गान यथायोग्य अवश्यही हो जायगा ॥ ५९ ॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ॥
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥६०॥

पदच्छेदः-प्रालेयाद्रेः उपतटम् अतिक्रम्य तान् तान् विशेषान् हंसद्वारम्

१-विद्युन्माली, रक्ताक्ष और हिरण्याक्ष इन तीन दैत्योंने माया करके सुवर्ण, चांदी और लोहा इन तीन धातुओंके तीन नगर बनाये वे नगर उड उडकर देवताओंको अत्यन्त दुःख देने लगे इस कारण शिवजीने उनको नष्ट कर दिया यह कथा पुराणोंमें अनेक स्थानोंमें वर्णित है इसीको ' त्रिपुरविजय' कहते हैं ।

२ "-विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि " । इति शब्दार्णवः ।

३-पूर्वकालमें परशुराम कैलासपर जाकर शिवजी महाराजसे स्वामी कार्त्तिकेयके साथ धनुर्विद्या सीखते थे, इन दोनोंमें विद्या सीखनेमें हिर्स थी तब स्वामी कार्त्तिकेयके सामने परशुरामने क्रौंचपर्वतपर बाण मारके आरपार छिद्र कर दिया इस कारण इस छिद्रको कविने ' भृगुपतियशोवर्त्म " यह विशेषण दिया इस विवरमें होकर हंसपक्षी मानससरोवरको आते हैं इस कारण इसको हंसद्वार कहा ।

भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् तेन उदीचीम् दिशम् अनुसरेः तिर्यगायामशोभी श्यामः पादः बलिनियमनाभ्युद्यतस्य इव विष्णोः ॥ ६० ॥

अन्वयः—प्रालेयाद्रेः उपतटम् तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य हंसद्वारम् भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् अस्ति तेन बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी उदीचीम् दिशम् अनुसरेः ॥ ६० ॥

अर्थः—हिमालयके तटके समीप उन उन देखने योग्य स्थलोंको उल्लँघन करके हंसोंके द्वार परशुरामके यशका मार्ग जो क्रौंचपर्वतका छिद्र है उस छिद्रसे राजा बलिको बांधनेमें उद्यत हुए विष्णु भगवान्के कृष्णवर्ण चरणके समान तिरछे लंबायमान होनेसे शोभायमान होता हुआ उत्तर दिशाको गमन कर ॥ ६० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! उस हिमालयके तटके समीप देखने योग्य चमत्कारोंको देखकर हंसोंके जानेका द्वार परशुरामके यशका मार्ग जो क्रौंचपर्वतका छिद्र है उधरसे होकर राजा बलिके बांधनेवाले विष्णु भगवान्के चरणके समान नीलवर्ण नीचेको तिरछा शोभायमान होकर उत्तरदिशाको जा ॥ ६० ॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ॥
शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ६१ ॥

पदच्छेदः—गत्वा च ऊर्ध्वम् दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्य अतिथिः स्याः शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैः यः वितत्य स्थितः खम् राशीभूतः प्रतिदिनम् इव त्र्यम्बकस्य अट्टहासः ॥ ६१ ॥

१–" क्रौंच " एक हिमालयके ऊंचे शिखरका नाम है इसकी लंबाईका निश्चय नहीं कि यह कितना है वह पर्वत चीनके पूर्वमे और आसामके उत्तरमें है ।

अन्वयः-ऊर्ध्वम् गत्वा दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य त्वम् अतिथिः स्याः यः कुमुदविशदैः शृंगोच्छ्रायैः खम् वितत्य प्रतिदिनम् राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव स्थितः आस्ते ॥ ६१ ॥

अर्थः-ऊपरको जाकर रावणकी भुजाओंसे हिले हुए पत्थरोंके जोडवाले देवताओंकी स्त्रियोंके दर्पण ऐसे कैलास पर्वतका अतिथि हो जो कैलास कुमुदके समान निर्मल शिखरोंकी ऊंचाईसे आकाशको व्याप्त करके प्रतिदिन इकट्टे हुए शिवजीके अतिहास्यके समान स्थित है ॥ ६१ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! क्रौंचपर्वतके छिद्रमेंसे होकर ऊपरको जाकर कैलास पर्वतका अतिथि बन, जिस कैलास पर्वतके शिखर रावणके उठानेसे हिल गये हैं और कैलास स्वच्छ और चमकीला होनेके कारण देवताओंकी स्त्रियोंका दर्पण और जिसके शिखर इतने ऊंचे हैं कि आकाशको छू रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रतिदिनका इकट्टा किया हुआ शिवजीका हास्य है ॥ ६१ ॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ॥
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीम्
अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः-उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे सद्यः कृत्तद्विरद-

---

१-रावणको शक्तिका गर्व होनेपर उसने कैलास पर्वतको उठाया था यह कथा पुराणोंमें वर्णित है और उठानेपर उसके जोड खुल गये ।

२-देवता तैंतीस करोड हैं ऐसी प्रसिद्धि है परन्तु इस बातकी परधर्मी लोग हंसी करते हैं कि-इक्कीस करोड हिन्दुओंके तैंतीस करोड देवता किस प्रकार हो सकते हैं परन्तु बृहदारण्यक उपनिषद्के नवम अध्यायके तृतीय ब्राह्मणमें विचक्षण शाकल्य ऋषिके प्रश्न करनेपर याज्ञवल्क्यजीने उत्तर दिया कि ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य इन्द्र और प्रजापति ये सब मिलकर ३३ हैं बाकी सब इनका ऐश्वर्य है ।

दशनच्छेदगौरस्य तस्य शोभाम् अद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् भवित्रीम् अंसन्यस्ते सति हलभृतः मेचके वाससि इव ॥ ६२ ॥

अन्वयः—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि अंसन्यस्ते हलभृत इव स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् शोभाम् भवित्रीम् उत्पश्यामि ॥ ६२ ॥

अर्थः—मले हुए चिकने अंजनके समान तुम्हारे तटके समीप प्राप्त होनेपर शीघ्रही काटे हुए हाथीके दांतके समान श्वेत उस पर्वतके कृष्ण वर्ण अन्य वस्त्र कंधेपर रखनेसे बलदेवके समान नेत्र मीचके देखने योग्य शोभाको होनेवाली देखता हूं ॥ ६२ ॥

भावार्थः—बिखरे हुए बहुत सारे कज्जलके समान कृष्णवर्ण तूं हाथीदांतके टुकडेके समान स्वच्छ कैलास पर्वतपर जायगा तो ऐसी शोभा होगी मानो बलदेवजीने अपने कंधेपर नीलाम्बर रख लिये हैं ऐसी आनन्दपूर्वक नेत्र मूंदकर देखने योग्य तेरी शोभा होगी ऐसा मुझको प्रतीत होता है ॥ ६२ ॥

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरेत्पादचारेण गौरी ॥
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः—हित्वा तस्मिन् भुजगवलयम् शम्भुना दत्तहस्ता क्रीडाशैले यदि च विहरेत् पादचारेण गौरी भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः सोपानत्वम् कुरु मणितटारोहणाय अग्रयायी ॥ ६३ ॥

१—" कालश्यामलमेचकाः " इत्यमरः ।

२—यहां मेघयुक्त कैलासपर्वतको बलरामकी उपमा देनेका कारण यह है कि बलरामका वर्ण गौर है और वस्त्र काले धारण करते है अतएव अमरसिंहने नीलाम्बर नाम कहा है । यहां पर्वत और बलरामका वर्ण सदृश होनेके कारण यहां पूर्णोपमालंकार है ।

अन्वयः–तस्मिन् क्रीडाशैले शम्भुना भुजगवलयम् हित्वा दत्तहस्ता गौरी पादचारेण यदि विहरेत् तर्हि त्वम् अग्रयायी तथा स्तम्भितान्तर्जलौघः भंगीभक्त्या विरचितवपुः मणितटारोहणाय सोपानत्वम् कुरु ॥ ६३ ॥

अर्थः–उस क्रीडा करनेके पर्वतपर शिवजीने सर्पके कडेको त्याग करके दिया है हाथ जिसको ऐसी पार्वती पैरों पैरों चलकर यदि विहार करें तब तूँ आगे चलनेवाला तथा स्थिर किया है भीतर जलका समूह जिसने ऐसा, सीढीकी रचना की है देहको जिसने ऐसा होता हुआ रत्नोंके शिखरपर चढनेके निमित्त सीढीपनेको कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः–उस शिवजीकी क्रीडा करनेके कैलासपर्वतपर सर्पके कंगनको दूर करके शिवजीने जिसको अपना हाथ पकडाया है ऐसी पार्वती जब उसके मणियोंके शिखरपर पैंदल फिरती हुई विहार करेंगी तब तूँ आगे जाकर अपने भीतर जलके प्रवाहको थामकर तथा सीढीके समान अपने शरीरको बनाकर उनके चढनेका सोपानमार्ग बन॥६३॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ॥
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६४ ॥

पदच्छेदः–तत्र अवश्यम् वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् नेष्यंति त्वाम् सुरयुवतयः यन्त्रधारागृहत्वम् ताभ्यः मोक्षः तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्यात् क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भीषयेः ताः ॥ ६४ ॥

१–कैलास मेरु मन्दर और गन्धमादन ये चार पर्वत महादेवकी क्रीडा करनेके निमित्त देवताओंने बनाये हैं यह शम्भुरहस्य नामक ग्रन्थमें वर्णित है । जैसे–

" कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः ।
क्रीडार्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् " ॥

२–शिवजी सर्पोंके आभूषण पहनते हैं यह पुराणोंमें प्रसिद्ध है यहां सर्पके कंकणको त्याग करनेका प्रयोजन यह है कि पार्वती डर न जाय ।

अन्वयः—तत्र अवश्यम् सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् त्वाम् यन्त्रधारागृहत्वम् नेष्यंति हे सखे घर्मलब्धस्य तव मोक्षः ताभ्यः यदि न स्यात् तर्हि क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भीषयेः ॥ ६४ ॥

अर्थः—वहाँ अवश्य देवताओंकी स्त्रियें कंकणोंकी नोंककी रगडसे निकला है जल जिसमें ऐसे तुझको पिचकारियोंके स्थानपनेको पहुंचा वेंगी, हे मित्र ! उष्णकालमें प्राप्त हुए तेरा छुटकारा उन देवांगनाओंसे यदि न होय तो क्रीडामें आसक्त हुई उन देवांगनाओंको कानोंके कठोर गर्जनशब्दोंसे भयभीत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—हे मित्र ! उस पर्वतपर देवांगना अपने कंकणोंकी नोकोंसे तुझमें छेद करेंगी तब तेरी घटाओंमेंसे इस प्रकार धारें छुटेंगी जैसे पिचकारियोंमेंसे, उष्णकालके कारण अत्यन्त प्रिय लगनेसे यदि क्रीडा करनेवाली उन देवांगनाओंसे छुटकारा न हो तो भयंकर गर्जना करके उनको भय दिखलाना ॥ ६४ ॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ॥
धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६५ ॥

पदच्छेदः—हेमाम्भोजप्रसवि सलिलम् मानसस्य आददानः कुर्वन् कामम् क्षणमुखपटप्रीतिम् ऐरावतस्य धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः नानाचेष्टैः जलद ! ललितैः निर्विशेः तम् नगेन्द्रम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—हे जलद ! हेमांभोजप्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः ऐरावतस्य

१—" घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात् । निदाघ उष्णोपगम उष्ण ऊष्मागमस्तपः ॥ " इत्यमरकोशे ।

२—इस समय इन्द्रके ऐरावतका सगम होनेका कोई सम्भव नहीं है परन्तु ऐरावत कामचारी होनेके कारण कदाचित् आ गया होगा । अथवा मानससरोवर कैलासपर है इस कारण शिवजीकी पूजा करनेके निमित्त इन्द्र ऐरावतपर चढकर आया होगा ।

क्षणमुखपटप्रीतिम् कुर्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः धुन्वन् नानाचेष्टैः ललितैः तम् नगेन्द्रम् कामम् निर्विशेः ॥ ६५ ॥

अर्थः—हे मेघ ! सुवर्णके कमलोंके पैदा करनेवाले मानससरोवरके जलको ग्रहण करता हुआ और ऐरावत हस्तीके क्षणमात्र मुखवस्त्रके आनन्दको करता हुआ तथा कल्पद्रुमके कोपलोंको वस्त्रोंके समान कंपायमान करता हुआ अनेक प्रकारकी चेष्टावाले जलोंसे उस पर्वतको यथावत् उपभोग कर ॥ ६५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जिसमें सुवर्णके कमल पैदा होते हैं उस मानस सरोवरके जलको पीकर और शिवजीकी पूजाके समय आये हुए इन्द्रके ऐरावतहाथीके जलपान करनेके समय मुखवस्त्रसे होनेवाले आनन्दको देख और मन्द वायु जिस प्रकार सूक्ष्म वस्त्रोंको हिलाती है उस प्रकार कल्पवृक्षोंके कोमल पत्तोंको हिलाकर जलपानादि नाना प्रकारकी क्रीडा करता हुआ उस कैलास पर्वतपर यथेच्छ विहार कर ॥ ६५ ॥

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ! ॥

१—मेघ वर्षनेपर हाथीकी सूंड भीगनेसे हाथीको क्लेश होता है इस कारण उसके मुखपर कपडा ढक देते हैं सोही यक्षने मेघसे कहा ।

२—ललितशब्द क्रीडाकाभी वाचक है जैसे—
"वा भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे ।
अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातपल्लवे ॥"—इति: शब्दार्णवः ।

३—निर्वेशशब्द उपभोगकाभी वाचक है जैसे—"निर्वेशो भृतिभोगयोः ।" इत्यमरः । यहां यथेच्छ भोगकर इस प्रकार कहनेका कारण यह है कि मित्रके घर यथेच्छ विहार करनाही मित्रताका फल है, कैलासपर्वत मेघका स्वाभाविक मित्र है क्योंकि मेघकी और पर्वतकी, कमलकी और सूर्यकी, समुद्रकी और चन्द्रमाकी, मोरकी और मेघकी, तथा वायुकी और अग्निकी स्वाभाविक मित्रता होती है किसी कारणवश नहीं ।

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६६ ॥

पदच्छेदः—तस्य उत्संगे प्रणयिनः इव स्रस्तगंगादुकूलाम् न त्वम् दृष्ट्वा न पुनः अलकाम् ज्ञास्यसे कामचारिन् ! या वः काले वहति सलिलोद्गारम् उच्चैर्विमाना मुक्ताजालग्रथितम् अलकम् कामिनी इव अभ्रवृन्दम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—प्रणयिनः इव तस्य उत्संगे स्रस्तगंगादुकूलाम् अलकाम् कामिनीम् इव दृष्ट्वा हे कामचारिन् ! त्वम् पुनः न ज्ञास्यसे इति न, उच्चैर्विमाना या वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दम् कामिनी मुक्ताजालग्रथितम् अलकम् इव वहति ॥ ६६ ॥

अर्थः—प्रियके समान उस कैलास पर्वतके उत्संगमें गिरा है गंगारूपी दुपट्टा जिसका ऐसी अलकापुरीको कामिनीके समान देखकर हे यथेच्छ फिरनेवाले मेघ ! तूँ फिर नहीं जानेगा यह नहीं ; ऊंचे ऊंचे हैं सतमंजले स्थान जिसमें ऐसी जो अलकापुरी तुम मेघोंके समयमें जलको छोडनेवाले मेघसमूहको कामयुक्त स्त्री मोतीके समूहसे गुंथे हुए केशपाशके जैसे धारण करती है ॥ ६६ ॥

भावार्थः—जिस प्रकार प्रियपुरुषकी गोदीमें कामिनी स्त्री बैठती है उसी प्रकार उस पर्वतके ऊर्ध्वभागमें वसी हुई जिसका गंगारूपी दुपट्टा गिर गया है ऐसी अलकापुरीको देखकर हे कामचारी मेघ ! तूँ नहीं

१—यहां " न ज्ञास्यसे इति न " यह दो नकारग्रहण किया है सो निश्चयार्थक है क्योंकि ग्रंथकारोंकी ऐसी रीति है कि स्मृति, निश्चय और सिद्धि, यह अर्थ दिखलाने होते हैं तो दो नकारोंका प्रयोग करते हैं ।

२—विमानशब्द सतमंजले स्थानका वाचक है जैसे—" विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि । "—इति यादवः ।

३—इस श्लोकमें कैलासको अनुकूल नायक और अलकाको स्वाधीनपतिका नायिका सूचित किया है । एक स्त्रीपर प्रेम करनेवाले नायकको अनुकूल नायक कहते और एक नायकपर प्रेम करनेवाली ललितनायिकाको स्वाधीनपतिका कहते हैं इसका उदाहरण—" लालयन्नलकप्रान्तान् रचयन् पत्रमंजरीम् । एकां विनादयन्कान्तां छायावदनुवर्तते ॥ "

पहचानेगा यह नहीं; किन्तु अवश्यही पहचानेगा। सतमंजले स्थानोंसे शोभायमान अलकावती तेरा समय (मेघकाल) प्राप्त होनेपर जिस प्रकार कामिनी स्त्री मोतियोंके जालोंसे गुथी हुई वेणीको धारण करती है उसी प्रकार वर्षाकी बूंदोंको धारण करनेवाले मेघसमूहको धारण करेगी ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाकविश्रीकालिदासविरचिते मेघदूताभिधे खण्डकाव्ये मुरादाबाद-
वास्तव्यपण्डितरामस्वरूपशर्मणा कृतया स्वरूपप्रकाशिका-
भिधव्याख्यया सहितः पूर्वमेघः समाप्तः ॥ १ ॥

उत्तरमेघः ।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगंभीरघोषम् ॥
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

पदच्छेदः-विद्युत्वन्तम् ललितवनिताः सेन्द्रचापम् सचित्राः संगीताय प्रहत-मुरजाःस्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयम् मणिमयभुवः स्तुङ्गम् अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः त्वाम् तुलयितुम् अलम् यत्र तैः तैः विशेषैः ॥ १ ॥

अन्वयः-हे मेघ ! यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीताय प्रहतमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युत्वन्तम् सेन्द्रचापम् स्निग्धगंभीरघोषम् अन्तस्तोयम् तुंगम् त्वाम् तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम् ॥ १ ॥

अर्थः-हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें चित्रोंसहित नाचसहित गान करनेके निमित्त बजाये गये हैं मृदंग जिनमें ऐसी मणियोंसे जडी हुई भूमिवाले आकाशको स्पर्श करनेवाले हैं शिखर जिनके ऐसे देवता-ओंके स्थान बिजलीवाले, इन्द्रधनुषसे सहित मधुर और गम्भीर शब्द करनेवाले, भीतर है जल जिसके ऐसे ऊंचे तुझको उन उन विशेष धर्मोंसे सदृशता करनेको समर्थ होंगे ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जहां सुन्दर स्त्रियाँ निवास करती हैं, जो सुन्दर चित्रोंसे सुशोभित हैं, जहाँ नृत्य और गानके साथ मृदंग बजते हैं, जहाँ भूमि रत्नोंसे जडी हुई है और जिनके शिखर आकाशको स्पर्श करने वाले हुए हैं, ऐसे उस अलकापुरीके देवमंदिर इन पूर्वोक्त विशेष गुणोंसे तेरी बराबरी करनेमें समर्थ होंगे, क्योंकि तुझमें बिजली निवास करती है, तूँ इन्द्रधनुषका धारण करनेवाला है, तेरा गम्भीर शब्द है, तूँ जलमय है और ऊंचा है ॥ १ ॥

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ॥
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः—हस्ते लीलाकमलम् अलके बालकुन्दानुविद्धम् नीता लोध्रप्रसवरजसा पांडुताम् आनने श्रीः चूडापाशे नवकुरवकम् चारु कर्णे शिरीषम् सीमंते च त्वदुपगमजम् यत्र नीपम् वधूनाम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यत्र वधूनाम् हस्ते लीलाकमलम् अलके बालकुन्दानुविद्धम् आनने

१—इस श्लोकमें कविने मेघ और अलकावर्तीके गृहोंका पूर्ण साम्य है, यह दिखलाया है। मेघके शरीरकी विद्युल्लता, इन्द्रधनुष, मेघगर्जना, जल (प्रतिबिम्बत्वधर्म) और ऊँचापन, उन विशेषधर्मोंका देवमन्दिरोंकी सुन्दरस्त्रियाँ, चित्रविचित्र रंग, मृदंगादि बाजोंका शब्द, रत्नोंकी जडी हुई भूमियाँ, शिखरोंका आकाशको स्पर्श करना, इन गुणोंसे यथाक्रम सादृश्य होनेके कारण यह पूर्णोपमा अलंकार है।

२—मल्लिनाथको छोडकर और टीकाकार ' अलकं ' ऐसा प्रथमान्त पाठ मानते हैं, परन्तु इस श्लोकमें हस्ते, आनने, इत्यादि शब्द सप्तम्यन्त हैं, इस कारण ' अलक ' शब्दभी सप्तम्यन्त होना चाहिये नहीं तो क्रमभंग होगा ऐसा मल्लिनाथका मत है। नाथनामक टीकाकार ऐसा कहते हैं कि ' अलक ' शब्द नित्य पुल्लिंग है इस कारण यहां ' नियतपुँल्लिंगताहानिः ' यह दोष होगा परन्तु इस कहनेमें कुछ गौरव नहीं है क्योंकि—' स्वभाववक्राण्यलकानि ' ' निर्धूतान्यलकानि । ' इत्यादि स्थलोंमें महाकविने ' अलक ' शब्द नपुंसकलिंग माना है ऐसा मल्लिनाथ कहते हैं।

लोध्रप्रसवरजसा पांडुताम् नीता श्रीः चूडापाशे नवकुरबकं कर्णे चारु शिरीषम् सीमन्ते त्वदुपगमजम् नीपम् अस्ति ॥ २ ॥

अर्थः-जिस अलकापुरीमें स्त्रियोंके हाथमें लीलाका कमल , केशोंमें कुन्दके पुष्पोंकी कलियोंका गुथाव, मुखमें लोध्रकी पुष्पोंके परागसे श्वेतताको पहुंचाई हुई शोभा, वेणी में नवीन कुरबकका पुष्प , कानमें सुन्दर शिरीषका पुष्प , मांगमें तेरी प्राप्तिसे उत्पन्न होनेवाले कदम्बका पुष्प है ॥ २ ॥

भावार्थः-जिस अलकापुरीमें विलासिनी स्त्रियाँ हाथोंके पोचोंमें कमल धारण करती हैं और केशोंमें कुन्दकी कलियोंके गजरे धारण करती हैं, जहांकी स्त्रियोंके मुखोंकी शोभा लोध्रके पुष्पोंकी परागसे पाण्डुवर्ण हो गई है , जहांकी स्त्रियाँ वेणीके मध्यमें कोरैयाके नवीन पुष्पोंको रखती हैं , कानोंमें सुन्दर शिरीषके पुष्पोंको धारण करती हैं और मांगोंमें वर्षाकालसे उत्पन्न होनेवाले कदम्बके पुष्पोंको धारण करती हैं ॥ २ ॥

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पाः[1]
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ॥
केकोत्कंठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः-यत्र उन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपाः नित्यपुष्पाः हंसश्रेणीरचित-रशनाः नित्यपद्माः नलिन्यः केकोत्कंठाः भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥ ३ ॥

अन्वयः-यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः अत एव उन्मत्तभ्रमरमुखराः नलिन्यः

१-कुन्दके फूल हेमन्तऋतुमें होते हैं, लोध्रके पुष्प शिशिरऋतुमें होते हैं, कुरबकके पुष्प वसन्तऋतुमें होते हैं, शिरीषके पुष्प ग्रीष्मऋतुमें होते हैं, कदम्ब वर्षाऋतुमें होते हैं, यद्यपि उपरोक्त पांच प्रकारके पुष्प भिन्न भिन्न ऋतुमें उत्पन्न होते हैं परन्तु यहां कविके वर्णनसे प्रतीत होता है कि अलकावतीमें इन सब पुष्पोंके वृक्ष प्रत्येक ऋतुमें फूलते हैं।

नित्यपद्माः अतएव हंसश्रेणीरचितरशनाः भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः अत एव केकोत्कण्ठाः प्रदोषाः नित्यज्योत्स्नाः अत एव प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः सन्ति ॥ ३ ॥

अर्थः–जिस अलकापुरीमें वृक्ष नित्यपुष्पवालें होते हैं इस कारणही उन्मत्त भ्रमरोंसे शब्दायमान पुष्करिणियें नित्य उत्पन्न होते हैं कमल जिनमें ऐसी, इस कारणही हंसोंकी पंक्तियोंकी बनी हैं मेखला जिनकी ऐसी, घरोंमें पाले हुए मयूर सदा प्रकाशमान हैं कलाप जिनके ऐसे, इस कारणही मयूर शब्दमें उत्कंठित और रात्रियें सदा चांदनियोंसे युक्त इस कारणही अन्धकारके नष्ट होनेसे सुंदर हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः–जिस अलकापुरीमें पुष्पोंके वृक्ष सब ऋतुओंमें फूलते हैं इस कारण उनके परागको भक्षण करके उन्मत्त होनेवाले भौंरे उनपर गुंजार करते रहते हैं और जहां पुष्करिणिये सदा कमलोंसे भरी रहती हैं और उनमें रहनेवाले हंसोंकी पंक्तियाँ उनकी मेखलासी प्रतीत होती हैं और गृहोंमें पाले हुए मोरोंके पिच्छ सदा तेजस्वी रहते हैं और वे नृत्य करते हैं और जिस अलकावतीमें रात्रिमें चन्द्रमाका प्रकाश होनेपर रात्रियाँ अन्धकार रहित होकर आनन्ददायक होती हैं ॥ ३ ॥

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ॥
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां नच खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः–आनन्दोत्थम् नयनसलिलम् यत्र न अन्यैः निमित्तैः न अन्यः तापः कुसुमशरजात् इष्टसंयोगसाध्यात् न अपि अन्यस्मात् प्रणयकलहात् विप्रयोगोपपत्तिः वित्तेशानां न च खलु वयः यौवनात् अन्यत् अस्ति ॥ ४ ॥

१–" केका वाणी मयूरस्य " इत्यमरः ।
२–" चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना " इत्यमरः ।

अन्वयः-यत्र वित्तेशानाम् आनन्दोत्थम् (एव) नयनसलिलम् अन्यैः निमित्तैः न इष्टसंयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् अन्यः तापः न प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः अपि न च यौवनात् अन्यत् वयः नास्ति खलु॥४॥

अर्थः-जिस कुबेरपुरीमें यक्षोंका आनन्दसेही उत्पन्न हुआ नेत्रोंका जल है अन्य कारणोंसे नहीं, प्रियके समागमसे निवारण होने योग्य कामदेवसे उत्पन्न होनेवालेसे अन्य ताप नहीं है प्रेमके कलहसे अन्य कारणसे वियोगकी प्राप्ति भी नहीं है और तरुणावस्थासे अन्य अवस्था नहीं है यह निश्चय है ॥ ४ ॥

भावार्थः-निश्चय है कि कुबेरपुरीमें आनन्दको छोडकर अन्य कारणसे यक्षोंके नेत्रोंमें आंसू नहीं निकलते हैं, प्रियजनके समागमसे शान्त होनेवाले कामज्वरसे अन्य ज्वर नहीं होता है, प्रेमके कलहके सिवाय अन्य कारणसे विरहका दुःख नहीं होता है और जहां युवावस्थाको छोडकर अन्य जरादि अवस्था नहीं है अर्थात् अलकावतीके निवासी सर्वदा आनन्दमें निमग्न रहते हैं और उनको रोग नहीं होता है, दुःख नहीं होता है, वियोग नहीं होता है और वृद्धावस्था नहीं होती है ॥ ४ ॥

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्द्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो दृष्टिमन्तः प्रभेदात् ॥
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः-पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्द्धिनः यत्र वाहाः शैलोदग्राः त्वम् इव करिणः दृष्टिमन्तः प्रभेदात् योधाग्रण्यः प्रति दशमुखम् संयुगे तस्थिवांसः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ५ ॥

१-"वित्ताधिपः कुबेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः" इस शब्दार्णवकोशके प्रमाणानुसार कुबेर तथा यक्षमात्रको वित्तेश कहते हैं।

अन्वयः—हे जलधर ! यत्र वाहाः पत्रश्यामाः अत एव दिनकरहयस्पर्द्धिनः शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखम् तस्थिवांसः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ५ ॥

अर्थः—हे मेघ ! जिस अलकापुरीमें घोडे पत्तोंके समान हरे, इस कारणही सूर्यके घोडोंकी हिर्स करनेवाले हैं और पर्वतोंके समान ऊंचे हाथी मद चूनेसे तेरे समान वर्षा करनेवाले हैं, मुख्य योधा रावणके सामने स्थित होनेवाले इस कारणही तलवारके घावोंके चिह्नोंसे धारण की है आभूषणोंकी कांति जिन्होंने ऐसे हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! जिस नगरीमें हरे रंगके घोडे सूर्यके घोडोंसे हिर्स करते हैं और जहांके पर्वतोंके समान उंचे मद चूते हुए हाथी तेरे समान मदकी वर्षा करते हैं और पराक्रमी योधा चन्द्रहास (तलवार) के घावोंसे रावणके सामने युद्ध करनेवाले शोभित होते हैं ॥ ५ ॥

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ॥
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—यस्याम् यक्षाः सितमणिमयानि एत्य हर्म्यस्थालानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि उत्तमस्त्रीसहायाः आसेवन्ते मधु रतिफलम् कल्पवृक्षप्रसूतम् त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेषु आहतेषु ॥ ६ ॥

१—सूर्यके घोडोंका हरा रंग होता है यह भागवतके द्वादशस्कन्धमे लिखा है. अलकावतीके घोडोंकाभी हरा रंग होता है उससे वे सूर्यके घोडोंकी हिर्स करते हैं।

२—अमरकोशके द्वितीयकाण्ड अष्टमवर्ग ८९ वे श्लोकमें चन्द्रहास नाम तलवार सामान्यका कहा है, परन्तु शाश्वतकोशमें—" चन्द्रहासो रावणासौ " इस प्रकार चन्द्रहास नाम रावणकी तलवारका कहा है।

३—कल्पवृक्ष इच्छित फल देता है इस कारण मद्यभी कल्पवृक्षसे प्राप्त होता है यह असम्भव नहीं ।

अन्वयः—यस्याम् यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः सितमणिमयानि अतएव ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि त्वद्गम्भीरध्वानिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतम् रतिफलम् मधु आसेवन्ते ॥ ६ ॥

अर्थः—जिस अलकावतीमें यक्ष उत्तम स्त्रियोंके साथी होकर श्वेत मणियोंसे जडे हुए इस कारणही नक्षत्रोंके प्रतिबिम्बोंके पुष्पोंसे रचना किये हुए ऊंचे गृहोंको प्राप्त होकर तेरे गम्भीर गर्जनेके समान शब्द वाले तबला मृदंगादिके मन्द मन्द बजानेपर कल्पवृक्षसे पैदा होनेवाले रतिफलनामवाले मद्यको सेवन करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस कुबेरपुरीमें ऊंचे ऊंचे गृहोंमें स्फटिकके बने हुए मद्य पीनेके स्थान नक्षत्रोंकी परछाईरूप पुष्पोंसे शोभायमान हैं उन गृहोंमें यक्ष सुन्दर स्त्रियोंके साथ निवास करके तेरे शब्दके समान गम्भीर शब्दवाले मृदंगादि बाजोंको हौले हौले बजाते हुए और नृत्य गान करते हुए कल्पवृक्षसे पैदा हुए रतिफलमद्यको पान करते हैं ॥ ६ ॥

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ॥
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमानाः मरुद्भिः मन्दाराणाम् अनुतटरुहाम् छायया वारितोष्णाः अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः संक्रीडन्ते मणिभिः अमरप्रार्थिताः यत्र कन्याः ॥ ७ ॥

१—रतिफल नाम पडनेका कारण यह है कि रति है फल जिसका सो रतिफल कहाता है इस मद्यके पीनेसे कामोद्दीपन होता है ऐसा मदिरार्णव नामवाले ग्रन्थमें कहा है जैसे—

" तालक्षीर-सितामृतामल-गुडोन्मत्तास्थिकालाह्वया
दार्वीन्द्रद्रुम-मोरटेक्षु-कदलीगुग्गुलप्रसूनैर्युतम् ॥
इत्थं चेन्मधुपुष्पभंग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतम् ।
क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु ॥ "

अन्वयः—यत्र अमरप्रार्थिताः कन्याः मन्दाकिन्याः[1] सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः अनुतटरुहाम् मन्दाराणाम् छायया वारितोष्णाः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः[2] अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते[3] ॥ ७ ॥

अर्थः—जिस अलकावतीमें देवताओंसे प्रार्थना योग्य यक्षकन्यायें मन्दाकिनीके जलोंसे शीतल—पवनोंसे सेवित हुई होकर, किनारोंपर उत्पन्न होनेवाले कल्पवृक्षोंकी छायासे शान्त की गई है उष्णता जिनकी ऐसी होकर सुवर्णके रेतमें मुट्ठीमें छुपकाई हुई ढूंढने योग्य मणियोंके द्वारा क्रीडा करती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जिस अलकावतीमें देवताओंसे प्रार्थना करने योग्य अर्थात् अत्यन्त सुन्दर यक्षकन्यायें आकाशगंगाके जलोंसे मिलनेके कारण शीतल हुई पवनोंसे स्पर्शसुखको प्राप्त होनेवाली और किनारोंपर उत्पन्न हुए कल्पवृक्षोंकी छायासे उष्णताको दूर करती हुई मंदाकिनीके किनारोंपर सुवर्णकी बालू मुट्ठीमें भरकर और उसमें रत्न छुपकाकर ढूंढनेका—गुप्तमणि नामवाले खेलको खेलती हैं ॥ ७ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ॥
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम् यत्र बिम्बाधराणाम्[4] क्षौमम् रागात्

१—गंगा तीनों लोकोंमें है और प्रत्येक लोकमें भिन्न भिन्न नाम है वहां स्वर्गकी गंगाका नाम मन्दाकिनी है ।

२—मन्दाकिनीका रेता सुवर्णमय है ऐसा पुराणोंमें लिखा है ।

३—इस खेलका गुप्तमणि नाम संस्कृत है जैसे शब्दार्णवकोशमें कहा है—
" रत्नादिभिर्वालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः ।
कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता ॥ "

४—' बिम्बाधरा ' इस शब्दसे विशेष प्रकारकी स्त्रीका बोध होता है जैसे—
" विशेषाः कामिनी-कान्ता भीरुबिम्बाधराङ्गनाः । ' इति शब्दार्णवः ।

अनिभृतकरेषु आक्षिपत्सु प्रियेषु अर्चिस्तुङ्गान् अभिमुखम् अपि प्राप्य रत्न-प्रदीपान् ह्रीमूढानाम् भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसिताशीथिलम् क्षौमम् रागात् आक्षिपत्सु ह्रीमूढानाम् बिम्बाधराणाम् चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखम् प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति ॥ ८ ॥

अर्थः—जिस अलकावतीमें चपल हैं हाथ जिनके ऐसे प्रिय-पुरुषोंके द्वारा वस्त्रकी गांठके खुलनेसे शिथिल वस्त्रको प्रेमसे खींचनेपर लज्जासे भरे हुए बिम्बके समान अधरोंवाली स्त्रियोंकी कुमकुमकी मुठी किरणोंसे ऊंचे रत्नोंके दीपकोंके सम्मुख प्राप्त होकर भी निष्फल है फेंकना जिसका ऐसी होती है ॥ ८ ॥

भावार्थः—जिस अलकावतीमें चपल हाथवाले कामी पुरुष स्त्रियोंके साथ विलासमें निमग्न होकर साडीकी गांठ खुलनेसे शिथिल वस्त्रको प्रीतिसे खींचते हैं तब स्त्रियें लज्जायुक्त होकर किरणोंसे प्रकाश करनेवाले रत्नोंके दीपकोंपर कुमकुम गुलाल आदिकी मुठियें फेंकती हैं परन्तु उनका फेंकना निष्फल होता है ॥ ८ ॥

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ॥
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशो जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमीः आलेख्यानाम् स्वजलकणिकादोषम् उत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टाः इव जलमुचः त्वादृशः जालमार्गैः धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः जर्जराः निष्पतंति ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मेघ ! नेत्रा सततगतिना[२] यद्विमानाग्रभूमीः नीताः त्वादृशः

१-कुमकुम गुलाल इत्यादि पदार्थ साधारण दीपिकादिपर डालनेसे तेज बुझ जाता है उसी प्रकार रत्नोंका दीपकभी बुझ जायगा ऐसा वन स्त्रियोंने समझा था।

२-" मातरिश्वा सदागतिः "—इत्यमरः।

जलमुचः आलेख्यानाम् स्वजलकणिकादोषम् उत्पाद्य सद्यः शंकास्पृष्टा इव धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः जर्जराः जालमार्गैः निष्पतंति ॥ ९ ॥

अर्थः–हे मेघ ! ले जानेवाली वायुसे जिस अलकापुरीके सतमंजले स्थानोंकी अग्रभूमियोंको पहुंचाये हुए तुझ सरीखे मेघ, अपने जलके कनोंसें चित्रोंके दोषको उत्पन्न करके तत्काल भयभीतसे धूमके बाहर निकलनेका अनुकरण करनेमें चतुर अलग अलग होकर झरोखोंके मार्गोंसे निकलते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थः–हे मेघ ! सदा चलनेवाली वायुसे अलकाके अत्यन्त ऊंचे सतमंजले स्थानोंपर पहुंचाये हुए तुझ जैसे मेघ , उन स्थानोंमें चित्रोंको अपनी झाहसे बिगाडकर उसी समय भयभीतसे होकर धुएँकी समान झरोंखोंमें होकर बाहरको निकलते हैं ॥ ९ ॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम्
अङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ॥
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥१०॥

पदच्छेदः–यत्र स्त्रीणाम् प्रियतमभुजालिंगनोच्छ्वासितानाम् अङ्गग्लानिम् सुरतजनिताम् तन्तुजालावलम्बाः त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः निशीथे व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनः चन्द्रकांताः ॥ १० ॥

अन्वयः–यत्र निशीथे[3] त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः[4] स्फुटजललव-

---

१–' शंका वितर्कभययोः " इति शब्दार्णवः ।

२–इस श्लोकमें दूसरा ध्वन्यर्थ निकलता है कि कोई स्त्रियोंमें फिरनेवाले दूतसे स्त्रियोंमे पहुंचाया हुआ व्यभिचारी पुरुष व्यभिचाररूप दोषसे तत्काल भयभीत हो वेश बदलके बाहर जाता है उसी प्रकार मेघ दोष उत्पन्न करके झरोखोंके मार्गसे बाहर जाता है ।

३–" अर्द्धरात्रनिशीथौ द्वौ " इत्यमरः ।

४–" पादा रश्म्यंघ्रितुर्यांशाः " इत्यमरः ।

स्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकांताः प्रियतमभुजालिंगनोच्छ्वासितानाम् स्त्रीणाम् सुरतजनिताम् अंगग्लानिम् व्यालुम्पन्ति ॥ १० ॥

अर्थः-जहां आधी रात्रिके समय तेरी रुकावटके दूर होनेसे निर्मल चन्द्रमाकी किरणोंसे स्पष्ट टपक रहे हैं जलके कण जिनमें ऐसे तोरणका अवलम्बवाले चन्द्रकान्तमणि प्रियपुरुषोंकी भुजोंसे आलिंगन करनेसे शिथिल स्त्रियोंके सुरतसे उत्पन्न हुई शरीरकी ग्लानिको दूर करती हैं ॥ १० ॥

भावार्थः-जिस अलकामें तेरी आड न होनेसे निर्मल चंद्रमाकी किरणोंसे टपक रहा है जल जिनमें ऐसी छज्जोंमें जडी हुई चन्द्रकान्त-मणि प्रियपुरुषोंके साथ दृढ आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुए तापको हरती हैं ॥ १० ॥

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकंठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्द्धम् ॥
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहायाः
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशंति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः-अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहम् रक्तकण्ठैः उद्गायद्भिः धनपतियशः किन्नरैः यत्र सार्द्धम् वैभ्राजाख्यम् विबुधवनितावारमुख्यासहायाः बद्धालापाः बहिरुपवनम् कामिनः निर्विशन्ति ॥ ११ ॥

अन्वयः-यत्र अक्षय्यान्तर्भवननिधयः विबुधवनितावारमुख्यासहायाः बद्धालापाः कामिनः प्रत्यहम् रक्तकण्ठैः धनपतियशः उद्गायद्भिः किन्नरैः सार्द्धम् वैभ्राजाख्यम् बहिरुपवनम् निर्विशन्ति ॥ ११ ॥

१-चन्द्रकान्त एक जातिका स्फटिक है इसपर चन्द्रमाकी किरणें पडनेंसे जल टपकने लगता है और टपका हुआ जल अंगपर लगनेसे अंगके दाहको शांत करता है ।

२-" बारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनैः । " यहां-' विबुधवनिता एव वारमुख्याः ' ऐसा अवधारणापूर्वपद कर्मधारयसमास करना चाहिये ।

३-चैत्ररथ नामवाला जो कुबेरका प्रसिद्ध बगीचा है उसका यह दूसरा नाम है विभ्राज नामवाला एक शिवजीका गण है उसने इस बगीचेकी रक्षा की है इस कारण इसका नाम वैभ्राजक कहा है इस विषयमें शम्भुरहस्य ग्रन्थका वचन है-

" वैभ्राजेन गणेन्द्रेण त्रातं वैभ्राजमाख्यया ॥ "

अर्थः-जहां अलकावतीमें नष्ट न होनेवाले गृहोंके भीतर रखे हैं खजाने जिनके ऐसे अप्सरारूप वेश्याओंके साथ बांधी है गोष्ठी जिन्होंने ऐसे कामी पुरुष प्रतिदिन मधुर कंठके शब्दवाले कुबेरके यशको गाते हुए किन्नरोंके साथ वैभ्राज नामवाले बाहरके बगीचेमें प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः-जिस अकलावतीमें जिनके गृहोंमें लक्ष्मी अखण्ड निवास करती है और जो अप्सरारूप वेश्याओंके साथ श्रृंगार गोष्ठीमें आनन्दसे वार्तालाप करते हैं ऐसे कामीजन प्रतिदिन मधुर और ऊँचे स्वरोंसे कुबेरका यश गान करनेवाले किन्नरोंके साथ वैभ्राजक बगीचेमें विहार करते हैं ॥ ११ ॥

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनकनलिनैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ॥
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ १२॥

पदच्छेदः-गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः यत्र मन्दारपुष्पैः पत्रच्छेदैः कनकनलिनैः कर्णविभ्रंशिभिः च मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः च हारैः नैशः मार्गः सवितुः उदये सूच्यते कामिनीनाम ॥ २२ ॥

अन्वयः-यत्र गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः मन्दारपुष्पैः तथा पत्रच्छेदैः कर्णविभ्रंशिभिः कनकनलिनैः तथा मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः हारैः सवितुः उदये कामिनीनाम् नैशः मार्गः सूच्यते ॥ १२ ॥

अर्थः-जिस अलकापुरीमें शीघ्र गतिके उत्कम्पसे, केशोंमेंसे गिरे हुए सुवर्णके पुष्पोंसे, कोमल पत्तोंके टुकडोंवाले कानोंमेंसे गिरे हुए सुवर्णके कमलोंसे, मोतियोंके समूहवाले स्तनोंके चारों तरफके टूट गए हैं डोरे जिनके ऐसे हारोंसे सूर्यके उदय होनेके समय स्त्रियोंके रात्रिका मार्ग जनाया जाता है ॥ १२ ॥

१-किसी पुस्तकमें 'मुक्ताजालैस्तनपरिमलैः' ऐसा पाठान्तर है इसका अर्थ-जहाँ मोतियोंपर लगी हुई स्तनोंकी सुगन्धिवाले ।

भावार्थः-जहां विलासिनी स्त्रियोंके चलनेके वेगसे उनकी वेणियोंसे गिरे हुए कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे और सुगंधित कोमल पत्तोंके टुकडोंसे और कानोंसे गिरे हुए सुवर्णके कमलोंसे तथा मोतीके समूहवाले स्तनोंपर टूट गये हैं डोरे जिनके ऐसे हारोंसे प्रातःकालके समय अभिसारिका स्त्रियोंका फिरना प्रतीत हो जाता है ॥ १२ ॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ॥
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः-मत्वा देवम् धनपतिसखम् यत्र साक्षात् वसन्तम् प्रायः चापम् न वहति भयात् मन्मथः षट्पदज्यम् सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः तस्य आरम्भः चतुरवनिताविभ्रमैः एव सिद्धः ॥ १३ ॥

अन्वयः-यत्र मन्मथः धनपतिसखम् देवम् साक्षात् वसन्तम् मत्वा भयात्[1] षट्पदज्यम् चापम् प्रायः न वहति तस्य आरम्भः सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः[2] चतुरवनिता विभ्रमैः एव सिद्धः भवति ॥ १३ ॥

अर्थः-जहां कामदेव कुबेरके मित्र महादेवको प्रत्यक्ष निवास करते हुए जानकर भयसे भ्रमरोंकी प्रत्यंचावाले धनुषको बहुत करके नहीं धारण करता है उस कामदेवका आरम्भ, भौंओंको चलने सहित युक्त किये हैं नेत्र जिसमें ऐसे कामिपुरुषरूप निशानोंपर सफल होनेवाले चतुर स्त्रियोंके विलासोंसेही निष्पन्न होता है ॥ १३ ॥

भावार्थः-जहां कुबेरके मित्र शिवजी निवास करते हैं, इस कारण भयसे भौंरोंकी पंक्तिकी प्रत्यंचावाला अपना धनुष कामदेव प्रायः धारण नहीं करता है, विषयीजनोंको पीडित करना

१-भयका कारण यह है कि महादेवजीने कामदेवको जला दिया था, यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है।

२-कामदेवका धनुष देखना कदाचित् निष्फल हो तो हो परन्तु चतुरस्त्रियोंके विलास कभीभी निष्फल नहीं होते हैं।

जिसका कार्य है ऐसा कामदेव भ्रूविलासयुक्त कामियोंके हृदय वेधनेमें समर्थ चतुरस्त्रियोंके विलाससेही सिद्ध होता है ॥ १३ ॥

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ॥
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः—वासः चित्रम् मधु नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम् पुष्पोद्भेदम् सह किसलयैः भूषणानाम् विकल्पान् लाक्षारागम् चरणकमलन्यासयोग्यम् च यस्याम् एकः सूते सकलम् अबलामण्डनम् कल्पवृक्षः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यस्याम् चित्रम् वासः नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम् मधु किसलयैः सह पुष्पोद्भेदम् भूषणानाम् विकल्पान् चरणकमलन्यासयोग्यम् लाक्षारागम् एवम् सकलम् अबलामण्डनम् एकः कल्पवृक्षः सूते ॥ १४ ॥

अर्थः—जिस अलकामें नाना प्रकारके रंगके वस्त्रको नेत्रोंके विलासका उपदेश करनेमें चतुर मद्यको कोमल पत्तोंके सहित पुष्पोंके विकाशको आभूषणोंके विशेष प्रकारोंको चरणकमलोंमें लगाने योग्य लाखके रंगको इसी प्रकार सम्पूर्ण स्त्रियोंके भूषणोंके समूहको इकला कल्पवृक्ष उत्पन्न करता है ॥ १४ ॥

भावार्थः—जिस अलकापुरीमें नाना प्रकारके रंगे हुए वस्त्र नेत्रोंके कटाक्षोंकी शिक्षा करनेवाले मद्य, कोमल पत्तोंसे सहित पुष्प, नाना प्रकारके आभूषण, चरणोंपर लगानेका लाखका रंग इत्यादि स्त्रीके सम्पूर्ण शृंगारोंको कल्पवृक्ष उत्पन्न करता है ॥ १४ ॥

१–स्त्रियोंके मद्यपान करनेपर वे जो शरीरके और नेत्रोंके हावभाव करती है उनसे अत्यन्त शोभायमान होती हैं और विषयीपुरुषोंको प्रिय लगती है इस कारण यहां मद्यकी गणना अन्य भूषणोंमें की है।

२–कचधार्य, देहधार्य, परिधेय और विलेपन यह चार प्रकारके स्त्रियोंके भूषण होते हैं इन भूषणोंके मिलनेमें अलकावतीकी स्त्रियोंको श्रम नहीं करना पडता वह उनको कल्पवृक्षसे अनायासहीमें मिल जाते हैं।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ॥
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः—तत्र अगारम् धनपतिगृहान् उत्तरेण अस्मदीयम् दूरात् लक्ष्यम् सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन यस्य उपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितः मे हस्तप्राप्यस्तबकनमितः बालमन्दारवृक्षः ॥ १५ ॥

अन्वयः—तत्र धनपतिगृहान् उत्तरेण अस्मदीयम् अगारम् सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम् यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्द्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तबकनमितः बालमन्दारवृक्षः अस्ति ॥ १५ ॥

अर्थः—उस अलकावतीमें कुबेरके गृहोंसे उत्तर दिशामें हमारा स्थान इन्द्रके धनुषके समान सुन्दर बाहरके दरवाजेके कारण दूरसे दीखता है जिस स्थानके समीपमें मेरी स्त्रीसे बढाया हुआ कृत्रिम पुत्र हाथसे प्राप्त होने योग्य पुष्पोंके गुच्छोंसे नमाहुआ छोटासा कल्पवृक्ष है ॥ १५ ॥

भावार्थः—वहां इन्द्रके धनुषके समान सुन्दर बाहरके दरवाजेवाला कुबेरके स्थानोंसे उत्तरकी ओर मेरा स्थान है जिस स्थानके समीप फूलोंके गुच्छोंसे झुका हुआ पुत्रके समान मेरी स्त्रीके द्वारा पालन किया हुआ छोटासा कल्पवृक्ष है, सो तूँ देख लेना ॥ १५ ॥

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ॥
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ १६ ॥

१—दरवाजेसे इन्द्रधनुषकी उपमा देनेका कारण यह है कि वह दरवाजा धनुषाकार और आकाशको स्पर्श करनेवाला तथा नाना प्रकारके रंगवाले रत्नोंसे जडा हुआ था इस कारण वह धनुषके समान चमकता था ।

पदच्छेदः–वापी च अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा हैमैः छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः यस्याः तोये कृतवसतयः मानसम् सन्निकृष्टम् न अध्यास्यन्ति व्यपगतशुचः त्वाम् अपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ १६ ॥

अन्वयः–अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालैः हैमैः विकचकमलैः छन्ना वापी अस्ति यस्याः तोये कृतवसतयः हंसाः त्वाम् प्रेक्ष्य अपि व्यपगतशुचः सन्निकृष्टम् अपि मानसम् न अध्यास्यन्ति ॥ १६ ॥

अर्थः–इस मेरे घरमें मरकतमणियोंसे जड़ा है सोपानमार्ग जिसका ऐसी, चिकने वैदूर्यमणिकी नालवाले सुवर्णके खिले हुए कमलोंसे भरी हुई बावडी है । जिस बावडीके जलमें निवास करनेवाले हंस तुझको देखकर भी दुःखरहित होकर समीप होनेवाले भी मानससरोवरको नहीं स्मरण करेंगे ॥ १६ ॥

भावार्थः–वहां मेरे घरमें एक सुन्दर बावडी है । वहां उतरनेकी सीढियें मरकतमणियोंसे जडी हैं और वैदूर्यनामक रत्नकी दंडीवाले प्रकाशवान् सुवर्णके कमल भर रहे हैं । उसके जलमें रहनेवाले हंसपक्षी सुखसे निवास करते हुए वर्षाकाल आनेसे भी मानस सरोवरके समीप होनेपरभी वहां जानेकी इच्छा नहीं करेंगे ॥ १६ ॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ॥
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ १७ ॥

पदच्छेदः–तस्याः तीरे रचितशिखरः पेशलैः इन्द्रनीलैः क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः मद्गेहिन्याः प्रियः इति सखे चेतसा कातरेण प्रेक्ष्य उपान्तस्फुरिततडिनम् त्वाम् तम् एव स्मरामि ॥ १७ ॥

अन्वयः–तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचितशिखरः कनककदलीवेष्टन-

१–यह शब्द चकारान्त है और स्त्रीलिंग वाक्शब्दके समान रूप होते हैं, जैसे—व्यपगतशुक्, व्यपगतशुचौ, व्यपगतशुचः, इत्यादि ।

प्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः अस्ति हे सखे ! उपान्तस्फुरिततडितम् त्वाम् प्रेक्ष्य मद्गेहिन्याः प्रियः इति कातरेण चेतसा तम् एव स्मरामि ॥ १७ ॥

अर्थः–उस बावडीके किनारेपर सुन्दर इन्द्रनील मणियोंसे रचित किया गया है शिखर जिसका ऐसा सुवर्णकी कदलीके वृक्षोंके वेष्टनसे सुन्दर क्रीडाका पर्वत है, हे मित्र ! समीपमें चमक रही है बिजली जिसके ऐसे तुझको देखकर मेरी स्त्रीका प्रिय है इस प्रकार कातर चित्तसे उसको ही स्मरण करता हूं ॥ १७ ॥

भावार्थः–उस सरोवरके समीप एक रमणीय क्रीडाका पर्वत है उसका शिखर इन्द्रनीलमणिका है और उसके चारों ओर सुवर्णकी कदली लगी हैं इस कारण अतिसुन्दर दीखता है। जो मेरी गृहिणीका प्रिय है, अतः हे सखे ! जिसके आसपास बिजली चमकती है ऐसे तुझको देखकर भयभीत और आनन्दयुक्त अन्तःकरणसे मुझको उस पर्वतका स्मरण होता है ॥ १७ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ॥
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः–रक्ताशोकः चलकिसलयः केसरः च अत्र कान्तः प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेः माधवीमंडपस्य एकः सख्याः तव सह मया वामपादाभिलाषी कांक्षति अन्यः वदनमदिराम् दोहदच्छद्मना अस्याः ॥ १८ ॥

१–क्रीडापर्वत इन्द्रनीलमणियोंसे जडा है इससे वह मेघके समान काला है मेघमें बिजली चमकती है उसी प्रकार उस पर्वतपर सुवर्णकी कदली चमकती है इस प्रकार दोनोंका सादृश्य होनेसे मेघको देखकर यक्षको उसके समान क्रीडापर्वतका स्मरण हुआ इस कारण यहां स्मरण नामवाला अलंकार है जैसे—

" सदृशाऽनुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते । "

अन्वयः-अत्र कुरबकवृतेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः तथा कान्तः केसरः (स्तः) एकः मया सह तव सख्याः वामपादाभिलाषी अन्यः दोहदच्छद्मना अस्याः वदनमदिराम् कांक्षति ॥ १८ ॥

अर्थः-इस क्रीडापर्वतपर कुरबकके वृक्ष हैं वाड जिसकी ऐसे माधवीलताके मण्डपके समीपमें चलायमान हैं कोमल पत्ते जिसके ऐसा लाल अशोकका वृक्ष और मनोहर बकुलका वृक्ष है। पहिला अशोकका वृक्ष मेरे साथ तेरी सखीके वामचरणकी इच्छा करने वाला है, दूसरा बकुलका वृक्ष दोहदके मिषसे इस सखीके मुखकी मदिराकी इच्छा करता है ॥ १८ ॥

भावार्थः-कुरबकके वृक्षकी वाडवाले उस क्रीडाशैलके ऊपर माधवीकुंजके समीप एक अशोकका और एक बकुलका ये दो वृक्ष हैं। उनमें पहिला अशोकका वृक्ष पुष्प उत्पन्न करनेके निमित्त मेरे साथ वर्त्तमान मेरी स्त्रीके वामचरणकी ताडनाकी इच्छा करता है और दूसरा बकुलका वृक्ष उसके मुखकी मदिराको चाहता है ॥ १८ ॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ॥

१-अशोकवृक्षपर स्त्रीकी लात लगनेसे और बकुलके वृक्षपर स्त्रियोंके मद्यका कुल्ला करनेपर फूल आता है इसी विषयका कविने वर्णन किया है और फूलनेके कारण पादताडन तथा मदिरासेचन ये इन वृक्षोंके दोहद कहलाते हैं इसी विषयमें प्रमाण—

" स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम् ॥
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमधुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्त्तनात्कर्णिकारः ॥ "

अर्थः-प्रियंगु, बकुल, अशोक, तिलक, कुरबक, मन्दार, चम्पक, आम्र, नमेरु और कर्णिकार ये वृक्ष क्रमसे तरुणीस्त्रीके स्पर्श, मदिराका कुल्ला करना चरणप्रहार करना, अवलोकन, आलिंगन, मृदु भाषण, उत्तम हास्य, फूत्कार, गान और नृत्य करना इनसे फूलते है ।

२-' तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् ।
पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदः स्यात्तु तत्क्रिया ॥ ' इति शब्दार्णवः ।

तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ १९ ॥

पदच्छेदः–तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टिः मूले बद्धा मणिभिः अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः तालैः शिञ्जावलयसुभगैः नर्तितः कान्तया मे याम् अध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृत् वः ॥ १९ ॥

अन्वयः–च तन्मध्ये अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले बद्धा स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टिः अस्ति शिञ्जावलयसुभगैः तालैः मे कान्तया नर्तितः वः सुहृत् नीलकण्ठः दिवसविगमे याम् अध्यास्ते ॥ १९ ॥

अर्थः–और उनके बीचमें छोटी वेलके समान है विकास जिनका ऐसी मणियोंसे मूलमें बनाई हुई स्फाटिकमणिकी है बैठक जिसकी ऐसी सुवर्णकी निवास करनेकी यष्टि है; शब्दायमान कंकणोंसे सुन्दर ताली बजानेसे मेरी स्त्रीसे नचाया हुआ तुम्हारा मित्र मोर सायं-कालके समय जिस यष्टिपर बैठता है ॥ १९ ॥

भावार्थः–उन दोनों वृक्षोंके बीचमें मणियोंसे जडी हुई स्फटिककी बैठकवाली पक्षियोंके निवास करनेकी सुवर्णकी यष्टि है; सायं-कालके समय उसी यष्टिपर बैठे हुए मोरको मेरी स्त्री मधुर कंकणोंके शब्दसे युक्त हाथोंकी तालियोंसे नाचना सिखाती है ॥ १९ ॥

एभिः[3] साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथाः

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ॥

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ २० ॥

१–मेघके देखनेपर मोर आनन्दमें होकर नाचने लगता है इस कारण मोरको मेघका मित्र कहा है ।

२–मोरका कण्ठ नीला होता है इस कारण उसका नाम नीलकण्ठ कहा है जैसे–
'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजंगभुक् ।' इत्यमरः ।

३–पहिलेसे इस श्लोकतक पांच श्लोकमें समृद्धिका वर्णन है इस कारण यहां उदात्त नामका अलंकार है इसका लक्षण–' तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते ।' इति ।

पदच्छेदः—एभिः साधो हृदयनिहितैः लक्षणैः लक्षयेथाः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा क्षामच्छायम् भवनम् अधुना मद्वियोगेन नूनम् सूर्यापाये न खलु कमलम् पुष्यति स्वाम् अभिख्याम् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे साधो ! हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा नूनम् अधुना मद्वियोगेन क्षामच्छायम् भवनम् लक्षयेथाः सूर्यापाये कमलम् स्वाम् अभिख्याम् न पुष्यति खलु ॥ २० ॥

अर्थः—हे चतुर ! हृदयमें रखे हुए इन लक्षणोंसे द्वारके दरवाजोंके दोनों ओर बनाई हैं आकृति जिनकी ऐसे शंख पद्म नामवाले निधियोंको देखकर निश्चय करके अब मेरे वियोगसे क्षीण हो गई है कान्ति जिसकी ऐसे गृहको देखना, क्योंकि सूर्यके नष्ट होनेपर कमल अपनी शोभाको नहीं बढाता है यह निश्चय है ॥ २० ॥

भावार्थः—हे चतुर पुरुष ! पहिले कहे हुए तोरणादि पांच लक्षणोंको ध्यानमें रखकर और दरवाजेके दोनों ओर बनाये हुए शंख पद्म नामवाले निधियोंके चित्रोंको देखकर अब मेरे वियोगसे कान्तिहीन मेरे घरको देखना। क्योंकि सूर्य जब अस्त हो जाता है तब कमल अपनी पूर्ण शोभाको नहीं धारण करता है ॥ २० ॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ॥
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—गत्वा सद्यः कलभतनुताम् शीघ्रसम्पातहेतोः क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः अर्हसि अन्तर्भवनपतिताम् कर्तुम् अल्पाल्पभासम् खद्योतालीविलसितनिभाम् विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ २१ ॥

१—साधुशब्द समर्थ और चतुरका वाचक है जैसे—
" साधुः समर्थो निपुणो वा " इति काशिकायाम् ।

२—कुबेरके यहां नौ खजाने हैं उनका सामान्यतः निधि नाम है उनके विशेषनाम-
" महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥ "—इत्यमरः ।

अन्वयः-हे मेघ ! शीघ्रसम्पातहेतोः सद्यः कलभतनुताम् गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः अल्पाल्पभासम् खद्योतालीविलसितनिभाम् विद्युदुन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतिताम् कर्तुम् अर्हसि ॥ २१ ॥

अर्थः-हे मेघ ! शीघ्र प्रवेश करनेके कारणसे तत्काल हाथीके बच्चेके शरीरके समान शरीरपनेको प्राप्त होकर पहिले कहे हुए सुन्दर शिखरवाले क्रीडापर्वतपर बैठा हुआ अत्यन्त अल्प है कान्ति जिसकी ऐसी पटवीजनोंकी पंक्तिके चमकनेके समान बिजलीके चमकनेरूप दृष्टिको गृहके भीतर पडी हुई करनेको योग्य है ॥ २१ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! तदनन्तर शीघ्र प्रवेश करनेके निमित्त तत्क्षण बालगजका रूप धारण करके पहिले कहे हुए सुन्दर शिखरोंवाले क्रीडापर्वतपर निवास करता हुआ अत्यन्त थोडी कान्तिवाले और पटवीजनोंके समान चमकती हुई अपनी बिजलीरूप दृष्टिको मेरे घरपर अवश्य डालना ॥ २१ ॥

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ॥
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ २२ ॥

पदच्छेदः-तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा

१-सादृश्य दिखाना हो तो गुणवाचक शब्दको द्वित्व होता है (८ । १ । १२) इस सूत्रके अनुसार । यहां बिजली और पटवीजनोंकी चमकका सादृश्य दिखलाया है इस कारण गुणवाचक अल्पशब्दको द्वित्व हुआ है द्विरुक्तिसे अत्यन्त अल्पता बोधित होती है इस विशेषणसे यह जताया कि बिजलीका विशेष प्रकाश न करना ।

२-श्यामाशब्दसे तरुणीका ग्रहण होता है जैसे-
" श्यामा यौवनमध्यस्था " इति उत्पलमालायाम् ।
अप्रसूता भवेच्छयामा श्यामा षोडशवार्षिकी ।
श्यामा च श्यामवर्णा च श्यामा मधुरभाषिणी ॥ '

३-इस विशेषणसे यक्षकी स्त्रीका भाग्यशालित्व और यक्षका चिरजीवित्व-

चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम् या तत्र स्यात् युवतिविषये सृष्टिः आद्या इव धातुः ॥ २२ ॥

अन्वयः—तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना स्तनाभ्याम् स्तोकनम्रा युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या तत्र स्यात् ॥ २२ ॥

अर्थः—दुर्बल है अंग जिसका ऐसी, तरुणी, नोकदार दांतवाली पके हुए बिम्बफलके समान अधरवाली, मध्यभागमें दुर्बल, भयभीत हरिणीके समान है देखना जिसका ऐसी, गम्भीर नाभिवाली, कटिपश्चाद् भागके भारसे मन्द गमनवाली, स्तनोंसे कुछ नमी हुई, ब्रह्माकी प्रथम सृष्टिसी जो वहां होगी ॥ २२ ॥

भावार्थः—अंगसे पतली, सोलह वर्षकी, तीखे दांतवाली, बिंबके समान होठवाली, पतली कमरवाली, हरिणीके समान चंचल नेत्रवाली, गम्भीर नाभिवाली, कटिपश्चात्भागके बोझसे मन्द मन्द चलनेवाली, स्तनोंके भारसे कुछ नमी हुई, तरुण स्त्रियोंके रचना करनेमें ब्रह्मासे प्रथम रची हुई जो स्त्री वहां होगी ॥ २२ ॥

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ॥
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः—ताम् जानीथाः परिमितकथाम् जीवितम् मे द्वितीयम् दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीम् इव एकाम् गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेषु एषु गच्छत्सु बालाम् जाताम् मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीम् वा अन्यरूपाम् ॥ २३ ॥

—सूचित किया है सोही सामुद्रिकशास्त्रमें कहा है—

" स्निग्धाः समानरूपाः सुपंक्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः ।
दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम् ॥
ताम्बूलरसरक्ता वा स्फुटभासः समोदयाः ।
यस्याः शिखरिणो दन्ताश्चिरं जीवति तत्पतिः ॥ "

१—यह पद्मिनीस्त्रीका लक्षण है यह रतिरहस्य ग्रंथमें कहा है जैसे-

" चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे । "

अन्वयः-सहचरे मयि दूरीभूते चक्रवाकीम् इव परिमितकथाम् एकाम् ताम् मे द्वितीयम् जीवितम् जानीथाः गाढोत्कण्ठाम्[1] बालाम् गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु शिशिरमथिताम् पद्मिनीम् वा[2] अन्यरूपाम् जाताम् अहम् मन्ये ॥२३॥

अर्थः-साथ रहनेवाले मेरे दूर होनेपर, घबराहटसे बोलनेवाली इकली उसको मेरा दूसरा प्राण जान ; अतिविरहकी पीडावाली उस तरुणीको विरहके कारण भारी इन दिनोंके बीतनेपर शिशिरकालसे मथी हुई कमलिनीके समान अन्यरूप हुई मानता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः-निरन्तर साथ रहकरभी इस समय वियोग होनेके कारण चक्रवाकसे वियुक्त हुई चक्रवाकीके समान, मित भाषण करनेवाली और इकली रहनेवाली मेरी स्त्रीको केवल दूसरा प्राण समझना; प्रबल-विरहवेदनासे पीडित हुई मेरी स्त्री मेरे वियोगके कारण अति कठिन मालूम होनेवाले इन दिनोंको व्यतीत करती हुई शिशिरकालसे गलने-वाली कमलिनीके समान रूपान्तरको प्राप्त हो गई होगी ॥ २३ ॥

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ॥
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ २४ ॥

पदच्छेदः-नूनम् तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् प्रियायाः निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् हस्तन्यस्तम्[3] मुखम् असकलव्यक्ति लम्बाल-कत्वात् इन्दोः दैन्यम् त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः बिभर्त्ति ॥ २४ ॥

१-प्रियकी प्राप्ति न होनेसे जो दुःख होता है उसको उत्कण्ठा कहते हैं जैसे-
" रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या ।
संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः ॥ "

२-यह अव्ययशब्द इवशब्दके समान उपमाका द्योतक है जैसे-
" उपमायां विकल्पे वा "-इत्यमरः ।
" इववत् वायथाशब्दौ "-इति दण्डी ।

३-हाथपर मुख रखकर बैठना शोकवान् और दुःखितका लक्षण है ।

अन्वयः—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् हस्तन्यस्तम् लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखम् त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः दैन्यम् बिभर्त्ति नूनम् ॥२४॥

अर्थः—अत्यन्त रोनेसे सूजे हुए नेत्रवाला, स्वांसोंकी उष्णतासे बदले हुए वर्णवाले होठवाला, हाथपें रखा हुआ, लम्बे केश होनेके कारण नहीं है पूर्ण प्रकटता जिसकी ऐसा उस प्रियाका मुख, तेरी आडसे मन्द है कान्ति जिसकी ऐसे चन्द्रमाकी खिन्नताको धारण करता है, यह निश्चय है ॥ २४ ॥

भावार्थः—मेरे वियोगसे अत्यन्त रुदन करनेके कारण जिसके नेत्र सूज गये हैं, गरम गरम स्वास लेनेसे जिसके होठोंका रंग बदल गया है और चिंताके कारण हाथपर रखा हुआ था बाल ऊपर पडे होनेके कारण पूरा न दीखता हुआ उस प्रियाका मुख, तेरी आड होनेसे निस्तेज चन्द्रमाकी दीनताको धारण करता होगा ॥ २४ ॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ॥
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२५॥

पदच्छेदः—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा मत्सादृश्यम् विरहतनु वा भावगम्यम् लिखन्ती पृच्छन्ती वा मधुरवचनाम् सारिकाम् पञ्जरस्थाम् कच्चित् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वम् हि तस्य प्रिया इति ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मेघ ! सा बलिव्याकुला वा विरहतनु भावगम्यम् मत्सादृश्यम्

१—इस पदसे पतिके वियोगके कारण केशसंस्कार आदिका अभाव दिखलाया है ।

२—अपने विरहसे यक्ष कितना दुर्बल है यह प्रत्यक्ष न होनेसे तर्क करके इतना दुर्बल होगया ऐसा निश्चय करनेका प्रयत्न करती होगी इस आशयसे भावगम्य कहा ।

३—यद्यपि सादृश्य दूसरी प्रसिद्ध वस्तुके आकारकी समता कहलाती है तथापि यहां सादृश्यशब्दसे चित्र लेना चाहिये सोही अक्षयकोशमें कहा है कि—

"आलेख्येऽपि च सादृश्यम् ।"

लिखन्ती मधुरवचनाम् अत एव पंजरस्थाम् सारिकाम् हे रसिके ! भर्तुः स्मरसि कच्चित् हि त्वम् तस्य प्रिया इति पृच्छन्ती ते आलोके पुरा निपतति ॥ २५ ॥

अर्थः—हे मेघ ! वह प्रिया देवाराधनमें लगी हुई या वियोगसे दुर्बल तर्कमात्रसे बनने योग्य मेरे शरीरके आकारको काढनेवाली और मधुर बोलनेवाली इस कारण ही पींजरेमें स्थित मैनाको 'हे सारिके ! यक्षको स्मरण करती है क्या ? क्योंकि तू उसी यक्षकी प्रिय है' इस प्रकार पूछती हुई तेरे देखनेमें पहिले आवेगी ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! वह मेरी प्रिया मुझसे शीघ्र मिलनेके अर्थ देवताओंके पूजन करनेमें लगी होगी अथवा विरहसे दुर्बल मेरे शरीरका चित्र काढती होगी अथवा मधुर बोलनेवाली पींजरेमें बैठी हुई मैनाको 'हे मैना ! तुझे अपने पालनेवालीकी याद है क्या ? क्योंकि तूँ उसको प्रिय थी' इस प्रकार पूंछती हुई तेरी दृष्टि पडेगी ॥ २५ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ॥
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचित्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ २६ ॥

पदच्छेदः—उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम् मद्गोत्रांकम् विरचितपदम् गेयम् उद्गातुकामा तन्त्रीम् आर्द्राम् नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित् भूयोभूयः स्वयम् अपि कृताम् मूर्च्छनाम् विस्मरन्ती ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे सौम्य ! मलिनवसने उत्संगे वीणाम् निक्षिप्य मद्गोत्रांकम् विरचितपदं गेयम् उद्गातुंकामा तथा नयनसलिलैः आर्द्राम् तन्त्रीम् कथंचित् सारयित्वा भूयोभूयः स्वयम् अपि कृताम् मूर्च्छनाम् विस्मरन्ती ॥ २६ ॥

१—'ऊचे स्वरसे गानेकी इच्छा करनेवाली' इस प्रकार कहनेका यह तात्पर्य है कि यक्ष देवयोनि होनेके कारण मनुष्योंकी अपेक्षा ऊचे स्वरसे गान करते है जैसे—

"षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायान्ति मानवाः ।
न तु गान्धारनामान स लभ्यो देवयोनिभिः ॥"

२—मूर्च्छना स्वरोंके उतार चढावोंका नाम है इस विषयमें संगीतरत्नाकरमें कहा है—
"स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि ॥"

12560

अर्थः–हे साधो ! मलिन वस्त्रवाली गोदीमें वीणाको रखकर मेरे नामका है चिह्न जिसमें ऐसे रचना किये हैं पद जिसमें ऐसे गीतोंको ऊंचे स्वरसे गानेकी इच्छा करनेवाली और नेत्रोंके जलसे भीजी हुई वीणाको अतिकठिनसे पोंछकर वारंवार अपने आपसेभी की हुई मूर्च्छनाको विस्मरण करती हुई (पर तेरी दृष्टि पडेगी) ॥ २६ ॥

भावार्थः–हे भ्राता ! मलिन वस्त्रवाली गोदीमें वीणाको रखकर मेरे नामसे युक्त गीतोंको ऊंचे गांधारस्वरसे गानेकी इच्छा करनेवाली और मेरे स्मरणसे उत्पन्न हुए आंसुओंसे भीजी हुई वीणाको न बजनेके कारण हाथोंसे जैसे तैसे पोंछकर और अपने आपसे की हुई मूर्च्छनाको वारंवार भूल जानेवाली मेरी प्रिया तेरी दृष्टिगोचर होगी ॥ २६ ॥

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ॥
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती[1]
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ २७ ॥

पदच्छेदः–शेषान् विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः वा विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः मत्संगं वा हृदयनिहितारम्भम् आस्वादयन्ती प्रायेण एते रमणविरहेषु अङ्गनानाम् विनोदाः ॥ २७ ॥

अन्वयः–विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा हृदयनिहितारम्भम् मत्संगम् आस्वादयन्ती प्रायेण अङ्गनानाम् रमणविरहेषु एते विनोदाः भवन्ति ॥ २७ ॥

अर्थः–पतिके वियोगके दिनसे निश्चय किये हुए अवधिके शेष महीनोंकी देहलीपर रखे हुए पुष्पोंके द्वारा गणनासे पृथ्वीपर रखती हुई अथवा हृदयमें कल्पित किया है आरम्भ जिसका ऐसे मेरे सम्भोगके

१–भरत रामनाथ हरिगोविन्द और कल्याणमल्ल इन्होंने अपनी टीकामें "आसादयन्ती" पाठ माना है ।

सुखको अनुभव करती हुई (होगी), बहुत करके स्त्रियोंको पतियोंके वियोगमें ये काल बितानेके उपाय होते हैं ॥ २७ ॥

भावार्थः-अथवा मेरे इधर आनेसे प्रारम्भ होनेवाले. वियोगकालके कितने महीने रहे हैं यह गिननेके लिये पृथ्वीपर देहलीपरसे उठाकर पुष्पोंको रखती होगी अथवा मनमें मेरे सम्भोग करनेकी कल्पना करके सम्भोगके सुखका अनुभव करती हुई तेरी दृष्टिगोचर होगी। क्योंकि प्रियपुरुषका वियोग होनेपर स्त्रियें समय व्यतीत करनेके लिये प्रायः पूर्वोक्त उपाय करती हैं ॥ २७ ॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ॥
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥ २८ ॥

पदच्छेदः-सव्यापाराम् अहनि न तथा पीडयेत् मद्वियोगः शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचम् निर्विनोदाम् सखी ते मत्सन्देशैः सुखयितुम् अलम् पश्य साध्वीम् निशीथे ताम् उन्निद्राम् अवनिशयनाम् सौधवातायनस्थः ॥ २८ ॥

अन्वयः-मद्वियोगः अहनि सव्यापाराम् ते सखीम् तथा न पीडयेत् किंतु रात्रौ निर्विनोदाम् गुरुतरशुचम् अहम् शङ्के, अतः निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनाम् ताम् साध्वीम् मत्संदेशैः अलम् सुखयितुम् सौधवातायनस्थः पश्य२८

अर्थः-मेरा वियोग दिनमें चित्रलेखनादि व्यापारमें लगी हुई तेरी सखीको रात्रिके समान नहीं पीडित करेगा, किन्तु रात्रिमें समय वितानेके व्यापाररहित अत्यन्त शोकयुक्त रहती होगी, मैं ऐसा विचारता हूं इस कारण आधीरातके समय जगी हुई, पृथ्वीपर शयन करनेवाली

१-वियोगिनी स्त्रीको-" सखा धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः ॥
सुखयन्तीष्टकथनसुखोपायैर्वियोगिनीम् ॥ "

अर्थ-मित्र और दूत इत्यादि सुखप्रद वार्ताओंको कहकर सुख देते हैं। और मेघ दूत है इस कारण इसको सुख दे ऐसा कहा।

उस पतिव्रताको मेरे संदेशोंसे पूर्ण सुख देनेके निमित्त भवनके झरोखेपर बैठा हुआ देख ॥ २८ ॥

भावार्थः—हे मित्र ! उस तेरी सखीको मेरा वियोग जिस प्रकार रात्रिमें पीडा देता होगा उस प्रकार चित्रलेखनादि पूर्वोक्त कार्योंमें लगे होनेके कारण दिनमें पीडा नहींकरता होगा । इससे रात्रिके समय अत्यन्त दुःखी होती होगी, यह मैं तर्क करता हूं । सो तूं आधी रातके समय निद्रारहित, पृथ्वीपर लेटी हुई उस पतिव्रताको मेरे संदेशोंसे पूर्ण सुख देनेको बंगलेके झरोखेमें बैठकर देखना ॥ २८ ॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः—आधिक्षामाम् विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम् अतएव प्राचीमूले तनुम् इव कलामात्रशेषाम् हिमांशोः नीता रात्रिः क्षणः इव मया सार्द्धम् इच्छारतैः या ताम् एव उष्णैः विरहमहतीम् अश्रुभिः यापयन्तीम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—आधिक्षामाम् विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम् अत एव प्राचीमूले कलामात्रशेषाम् हिमांशोः तनुम् इव स्थिताम् तथा या रात्रिः मया सार्द्धम् इच्छारतैः क्षणः इव नीता ताम् एव विरहमहतीम् उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् पश्य ॥ २९ ॥

अर्थः—मनकी व्यथासे दुर्बल, विरहकालके योग्य पत्तों आदिकी शय्यापर टेकी है एक करवट जिसने ऐसी, इस कारणही पूर्वदिशाके तलेके भागमें कलामात्र है शेष जिसके ऐसे चंद्रमाकी देहके समान स्थित, तथा जो रात्रि मेरे साथ इच्छाके अनुसार किये हुए संभोगोंसे क्षणमात्रके समान बिताई थी विरहके कारण बडी उसी रात्रिको उष्ण आंसुओंसे बिताती हुईको देख ॥ २९ ॥

१—पूर्णचन्द्रबिम्बके सोलहवें भागको कला कहते हैं शुक्लपक्षमें प्रत्येक दिन चन्द्रबिम्बकी एक एक कला बढती है और कृष्णपक्षमें एक २ कला घटती जाती है ।

भावार्थः-चित्तके दुःखसे दुर्बल, विरहकालके उपयुक्त पल्लवादिकी शय्यापर एक करवटसे सोती हुई, उदयाचलपर आए हुए एक कलामात्र शेष चन्द्रमाकी देहके समान और जो रात्रि मेरे साथ इच्छित संभोगसे क्षणमात्रसी बिताई थी विरहके कारण बडी मालूम होनेवाली उसी रात्रिको इस समय गरम आंसू गिराकर बिताती हुई मेरी प्रियाको अवलोकन कर ॥ २९ ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव ॥
चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः-पादान् इन्दोः अमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान् पूर्वप्रीत्या गतम् अभिमुखम् सन्निवृत्तम् तथा एव चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीम् साभ्रे अह्नि इव स्थलकमलिनीम् न प्रबुद्धाम् न सुप्ताम् ॥ ३० ॥

अन्वयः-जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखम् गतम् तथा एव सन्निवृत्तम् चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीम् अत एव साभ्रे अह्नि न प्रबुद्धाम् न सुप्ताम् स्थलकमलिनीम् इव स्थिताम् पश्य ॥ ३० ॥

अर्थः-झरोखोंके मार्गसे आई हुई अमृतसे ठण्ढी चन्द्रमाकी किरणोंके सम्मुख पहले प्रेमसे गये हुए उस प्रकार ही लौटे हुए नेत्रको दुःखसे आंसुओंसे भारी पलकोंसे ढकती हुई, इस कारण ही

१-प्रतिदिन क्षीण होता २ चन्द्रमा एक कलामात्र शेष रहनेसे अमावस्याके दिन जैसा कृश और निस्तेज दीखता है उसी प्रकार एक करवटसे पडी हुई मेरी स्त्री विरहकी पीडासे दुर्बल और निस्तेज दीखेगी; इस प्रकार यहां उपमालंकार है।

२-चन्द्रमाकी किरणें शीतल और नेत्रोंको आनन्ददायक होती हैं तथापि विरही पुरुषोंको ताप देनेवाली और दुःसह होती हैं इस कारण यक्षकी स्त्रीने उनसे नेत्रको हटाया।

३-अभ्रके दिन कमल आधे खिलते हैं यह प्रसिद्ध है।

अभ्रसहित दिनमें नहीं खिली हुई, नहीं मुंदी हुई—स्थलकी कमलिनीके समान स्थित हुईको देख ॥ ३० ॥

भावार्थः—झरोखोंमेंसे आई हुई ठण्ढी चन्द्रमाकी किरणें पहलेके समान आनन्द देंगी, इस भरोसेसे पहिले लगाये हुए फिर विरहके कारण दुःसह होनेसे हटाये हुए दुःखके आंसुओंसे भरे हुए नेत्रोंको पलकोंसे ढँकती हुई अभ्रके दिन न पूर्ण खिली हुई न पूर्ण मुंदी हुई—स्थलकी कमलिनीके समान मेरी प्यारीको देख ॥ ३० ॥

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ॥
मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः—निःश्वासेन अधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीम् शुद्धस्नानात् परुषम् अलकम् नूनम् आगण्डलम्बम् मत्संभोगः कथम् उपनयेत् स्वप्नजः अपि इति निद्राम् आकांक्षन्तीम् नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—शुद्धस्नानात् परुषम् नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम्[1] अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्तीम् तथा स्वप्नजः अपि मत्सम्भोगः कथम् उपनयेत् इनि नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम निद्राम् आकांक्षन्तीम् पश्य ॥ ३१ ॥

अर्थः—शुद्ध स्नानसे कठिन एवं निश्चयतः गालोंपर्यन्त लटके हुए केशोंको अधररूपी कोमल पत्तेको क्लेश देनेवाले सांससे हिलानेवाली और स्वप्नमें भी मेरा संभोग कैसे प्राप्त हो, इस कारण आंसुओंके प्रवाहसे रोका गया है स्थान जिसका ऐसी निद्राको इच्छा करती हुईको देख ॥ ३१ ॥

भावार्थः—तेल उबटन आदिरहित केवल—मात्र जलसे स्नान करनेके कारण कठोर और गालोंपर लटके हुए केशोंको अधररूप कोमल-

---

१—यहां जातिकी अपेक्षासे एकवचन ग्रहण किया है नहीं तो अलकान् ऐसा बहुवचनान्त पाठ होना चाहिये ।

पत्तेको पीडा देनेवाले गरम सांसोंसे हिलाती हुई तथा स्वप्नमेंभी मेरा संभोग कैसे होगा? इस कारण आंसुओंने जिसका स्थान रोक लिया है ऐसी निद्राको इच्छा करनेवाली मेरी स्त्रीको अवलोकन कर ॥ ३१ ॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ॥
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः-आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा शापस्य अन्ते विगलितशुचा ताम् मया उद्वेष्टनीयाम् स्पर्शक्लिष्टाम् अयमितनखेन असकृत् सारयन्तीम् गण्डाभोगात् कठिनविषमाम् एकवेणीम् करेण ॥ ३२ ॥

अन्वयः-आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयाम् स्पर्शक्लिष्टाम् कठिनाविषमाम् ताम् एकवेणीम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीं पश्य ॥ ३२ ॥

अर्थः-पहिले विरहदिन फूलोंकी मालाको दूर करके जो वेणी बांधी, शापके अन्तमें नष्ट हुआ है शोक जिसका ऐसे मुझसे बांधने योग्य, स्पर्श करनेपर क्लेश देनेवाली कठोर और खुली हुई उस एकवे बढे हैं नख जिसमें ऐसे हाथसे गालोंके विस्तारसे वारंवार इकट्ठा करती हुई को देख ॥ ३२ ॥

भावार्थः-वियोगके पहले दिन फूलोंके हारोंको दूर करके बांधी हुई, शापके अनन्तर मुझसे दुःखरहित करके बांधने योग्य, चिक्कट होनेसे स्पर्शसे क्लेश देनेवाली, तैलादिके न होनेसे कठोर और खुसटी हुई वेणीको बडे बडे नखवाले हाथोंसे गालोंपर वारंवार हटाती हुई मेरी प्रियाको अवलोकन कर ॥ ३२ ॥

१-'कठिना च सा विषमा कठिनविषमा' यह तत्पुरुषसमास (१ । २ । ५७) इस सूत्रके अनुसार हुआ है।

२-'एकीभूता वेणी एकवेणी' यह तत्पुरुषसमास (२ । १ । ४९) इस सूत्रके अनुसार हुआ है।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम् ॥
त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः—सा संन्यस्ताभरणम् अवला पेशलम् धारयन्ती शय्योत्सङ्गे निहितम् असकृत् दुःखदुःखेन गात्रम् त्वाम् अपि अस्रम् नवजलमयम् मोचयिष्यति अवश्यम् प्रायः सर्वः भवति करुणावृत्तिः आर्द्रान्तरात्मा ॥ ३३ ॥

अन्वयः—अबला संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्संगे निहितम् पेशलम् गात्रम् धारयन्ती त्वाम् अपि नवजलम् अस्रम् अवश्यम् मोचयिष्यति तथा हि प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति ॥ ३३ ॥

अर्थः—निर्बल, त्याग दिये हैं आभूषण जिसकी ऐसी वारंवार अतिदुःखसे शय्याके मध्यभागमें रखी हुई कोमल देहको धारण करती हुई वह तुझको भी नवीन जलरूप आंसू अवश्य गिरवावेगी क्योंकि बहुत करके दयायुक्त अन्तःकरणवाला सबही जन दयायुक्त मनकी वृत्तिवाला होता है ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जिसके भूषण दूर कर दिये हैं, जो अतिदुःखसे वारंवार शय्याके समीपभागमें पडा हुआ है ऐसे अत्यन्त कोमल शरीरको धारण करनेवाली अबलाको तूँ देखेगा तो अवश्य नवीन जलरूप आंसुओंको गिरावेगा क्योंकि जिसका अन्तःकरण कोमल होता है उसका वर्ताव दयायुक्त होता है ॥ ३३ ॥

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ॥

१—" आर्द्रान्तरात्मा " इस शब्दमें श्लेष है, जिसका अन्तःकरण आर्द्र अर्थात् बलयुक्त है वह हुआ ' आर्द्रान्तरात्मा मेघ ' अथवा आर्द्र कहिये दयायुक्त है आत्मा अर्थात् अन्तःकरण जिसका वह हुआ ' आर्द्रान्तरात्मा ' ।

२—इस कहनेसे तूँ शीघ्र जाकर उसको सावधान कर, नहीं तो उसका प्राणान्त हो जायगा यह यक्षने सूचित किया ।

वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः-जाने सख्याः तव मयि मनः सम्भृतस्नेहम् अस्मात् इत्थम्भूताम् प्रथमविरहे ताम् अहम् तर्कयामि वाचालम माम् न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति प्रत्यक्षं ते निखिलम् अचिरात् भ्रातः ! उक्तम् मया यत् ॥ ३४ ॥

अन्वयः-हे मेघ ! तव सख्याः मनः मयि सम्भृतस्नेहम् जाने अस्मात् प्रथमविरहे ताम इत्थम्भूताम् अहम तर्कयामि सुभगम्मन्यभावः माम् वाचालम न करोति खलु किन्तु हे भ्रातः ! मया यत् उक्तम तत् निखिलम अचिरात ते प्रत्यक्षम भविष्यति ॥ ३४ ॥

अर्थः-हे मेघ ! तेरी सखीका मन मुझमें अधिक है प्रीति जिसका ऐसा जानता हूं इस कारणसे प्रथमवियोगमें उसको पूर्वोक्त अवस्थाको प्राप्त होनेवाली मैं तर्क करता हूं । अपनेको भाग्यशाली माननापन मुझको वाचाल नहीं करता है, यह निश्चय है; परन्तु हे भाई ! मैंने जो कहा वह सब शीघ्रही तेरे दृष्टिगोचर होगा ॥ ३४ ॥

भावार्थः-तेरी सखी अर्थात् मेरी स्त्रीका मन मुझमें परिपूर्ण प्रेम करनेवाला है यह मैं जानता हूं और इसी कारण वियोगके प्रारम्भमें पूर्वोक्त दशा हुई होगी; यह अनुमान करता हूं । अपने भाग्यशालीपनके अभिमानसे मैं वाचालता नहीं करता हूं इससे हे बन्धो ! जो मैं कहता हूं सो सत्य है, तुझको भी शीघ्र प्रत्यक्ष हो जायगा ॥ ३४ ॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ॥

१-" आलोके ते निपतति " इत्यादि पूर्वोक्त आठ अवस्था जिसको प्राप्त हुई है, वियुक्त कामी जनोंको दश प्रकारकी कामावस्था प्राप्त होती है ऐसा कामशास्त्रमें कहा है । जैसे-" दृक्संग, मनःसंग, संकल्प, जागर, कृशता, अरति, विषयत्याग, उन्माद, मूर्च्छा और अन्त " इनमें प्रथम दृक्संगरूप अवस्था अदृष्ट वस्तुमात्रोंमें उत्पन्न होनेवाली है इस कारण वह यक्षपत्नीको नहीं प्राप्त हुई और पिछली अन्तवस्था मरण उसको नहीं प्राप्त हुई रसभंग होनेके कारण वह वर्णन करना कविको इष्ट नहीं है ।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पंदि शंके मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः-रुद्धापांगप्रसरम् अलकैः अञ्जनस्नेहशून्यम् प्रत्यादेशात् अपि च मधुनः विस्मृतभ्रूविलासम् त्वयि आसन्ने नयनम् उपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्याः मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति ॥ ३५ ॥

अन्वयः-अलकैः वृद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम् अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृतभ्रूविलासम् त्वयि आसन्ने सति उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनम् मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति शंके ॥ ३५ ॥

अर्थः-केशोंसे रोका गया है कोनोंका विस्तार जिसके, अंजनकी स्निग्धतासे शून्य और मद्यके त्यागसे विस्मृत हो गया है भ्रुकुटीका विलास जिसका, तेरे समीप होनेपर ऊपरके भागमें फडकनेवाला मृगनयनीका नेत्र मत्स्योंके चलनेसे चञ्चलकमलकी शोभाके सादृश्यको प्राप्त होगा, इस प्रकार अनुमान करता हूं ॥ ३५ ॥

भावार्थः-केशोंकी आड़ होनेसे जिसके कोने ढके हुए हैं और अंजनके न होनेसे जिसमें तरी नहीं है तथा मदिरापानके त्यागसे जो भ्रुकुटीविलासको भूल गया है ऐसा मृगनयनीका तेरे जानेसे ऊर्ध्वभागमें फड़कनेवाला वामनेत्र मच्छियोंके फिरनेसे कम्पायमान कमलोंके समान होगा यह मुझको अनुमान होता है ॥ ३५ ॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या ॥

१-स्त्रियोंका वामनेत्र ऊर्ध्वभागमे फकडनेपर इच्छित फल देता है, यह "निमित्तनिदान" नामक ग्रन्थमें कहा है जैसे—

"स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं ललाटे पट्टमंशुकम् ।
इष्टप्राप्तिं दृशोरूर्ध्वमपांगे हानिमादिशेत् ॥"

यद्यपि यहां वामनेत्र ऐसा उल्लेख नहीं किया है तथापि स्त्रियोंका वामअग श्रेष्ट होता है इस कारण वामनेत्रका ग्रहण किया है जैसे—

"वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दाक्षिणः ।
दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलंकरणेऽपि च ॥"

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः—वामः च अस्याः कररुहपदैः मुच्यमानः मदीयैः मुक्ताजालम् चिरपरिचितम् त्याजितः दैवगत्या सम्भोगान्ते मम समुचितः हस्तसंवाहनानाम् यास्यति ऊरुः सरसकदलीस्तंभगौरः चलत्वम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—मदीयैः कररुहपदैः मुच्यमानः चिरपरिचितम् मुक्ताजालम् दैवगत्या त्याजितः सम्भोगान्ते मम हस्तसंवाहनानाम् समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः चलत्वम् यास्यति ॥ ३६ ॥

अर्थः—मेरे नखोंके चिह्नोंसे रहित, बहुत कालसे अनुभव किया-हुआ मोतियोंका जाल प्रारब्धवश जिससे दूर कर दिया है, सम्भोगके अन्तमें मेरे हाथोंसे मर्दनके योग्य रसयुक्त कदलीके खम्भके समान गौरवर्ण इसकी बांयीं जंघा चंचलपनेको प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥

भावार्थः—मेरे नखोंके चिह्नोंसे रहित, बहुत कालका धारण किया हुआ मोतियोंका कटिभूषण जिसका प्रारब्धवश इस समय दूर हो गया है और सम्भोग करनेके अनन्तर मेरे हाथोंसे दाबने योग्य तथा गीली कदलीके समान गौरवर्ण उसकी जंघा तेरे जानेसे फडकेगी ॥ ३६ ॥

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ॥
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः—तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात् अन्वास्य एनाम् स्तनितविमुखः याममात्रम् सहस्व मा भूत् अस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित् सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३७ ॥

१-स्त्रियोंकी बाईं जंघा फडकना संगभोगसुख प्राप्तिका लक्षण है यह 'निमित्त-निदान' नामक ग्रंथमें कहा है। जैसे-"ऊरोः स्पन्दाद्रतिं विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः।"

अन्वयः—हे जलद ! यदि तस्मिन् काले सा लब्धनिद्रासुखा स्यात् तर्हि एनाम् अन्वास्य स्तनिताविमुखः सन् याममात्रम् सहस्व अस्याः प्रणयिनि मयि कथंचित् स्वप्नलब्धे गाढोपगूढम् सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि मा भूत् ॥३७॥

अर्थः—हे मेघ ! यदि उस समय वह निद्रासुखको प्राप्त हुई हो तो इसको अनुसरण करके गर्जनरहित होकर प्रहरभर धीरजधर, इसके प्रिय मेरे अतिकठिनसे स्वप्नमें प्राप्त होनेपर, दृढ आलिंगन शीघ्र कंठसे छूट गई है भुजारूप लताओंकी गांठ जिसकी ऐसा न हो ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! तूं जायगा उस समय यदि वह निद्रासुखका अनुभव करती हो तो उसके पीछेकी ओर बैठकर चुप होकर एक पहरतक वाट देखना। क्योंकि उसका प्रियपति जो मैं उसकी अति कठिनसे स्वप्नमें भेट होनेपर अपनी भुजाओंरूप लताओंसे गलेमें डाली हुई गांठ निद्राभंग होनेपर छूट न जाय ॥ ३७ ॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ॥
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः—ताम् उत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन प्रत्याश्वस्ताम् समम् अभिनवैः जालकैः मालतीनाम् विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनाम् त्वत्सनाथे गवाक्षे वक्तुम् धीरः स्तनितवचनैः मानिनीम् प्रक्रमेथाः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—ताम् स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन उत्थाप्य अभिनवैः मालतीनाम्

१–पहिले २५ वें श्लोकमें 'उन्निद्राम्' यह विशेषण दिया है उससे उस यक्षकी स्त्रीको निद्रा नहीं आती थी यह प्रकट होता है और यहां निद्रासुखका अनुभव करना कहा है इससे यहां पूर्वापर विरोध आता है यह शंका करना योग्य नहीं क्योंकि यहां सातवीं अवस्था कही है उसमें कभी २ निद्रा आती है।

जालकैः समम् प्रत्याश्वस्ताम् त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनाम् मानिनीम् विद्युद्गर्भः धीरः स्तनितवचनैः वक्तुम् प्रक्रमेथाः ॥ ३८ ॥

अर्थः–उसको अपने जलके कणोंसे शीतल वायुसे उठाकर नवीन मालतीकी कलियोंके साथ जगनेवाली, तेरेसहित झरोखेमें निश्चल हैं नेत्र जिसके ऐसी मानवतीको बिजली है भीतर जिसके ऐसा धीर होकर गर्जनरूप शब्दोंसे वार्त्तालाप करनेको प्रारम्भ कर ॥ ३८ ॥

भावार्थः–तेरे जलकी बिन्दुओंसे शीतल हुई पवनसे उसको जगाकर, तदनन्तर मालतीके पुष्पोंके साथमें जगनेवाली और जिस झरोखेमें तूँ बैठेगा उसको निश्चल नेत्रोंसे देखती हुई विचारशील उस स्त्रीको बिजलीयुक्त धैर्यपूर्वक गर्जनाशब्दसे वार्त्तालाप करनेका प्रारम्भ कर ॥ ३८ ॥

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ॥
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः–भर्तुः मित्रम् प्रियम् अविधवे विद्धि माम् अम्बुवाहम् तत्सन्देशैः हृदयनिहितैः आगतम् त्वत्समीपम् यः वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यताम् प्रोषितानाम् मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ३९ ॥

अन्वयः–हे अविधवे! माम् भर्तुः प्रियम् मित्रम् हृदयनिहितैः तत्संदेशैः

१–जलकणोंसे युक्त शीतल वायुके स्पर्शसे मालतीकी कली प्रफुल्लित हो गई है उसी प्रकार वह भी अपनी उदासीनताको छोडकर सुचित्त होगी इस प्रकार यक्षकी स्त्रीका नाजुकपना फूलोंके समान दिखलाया है ।

२–सनाथ कहिये सहित जैसे—
" सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि । "–इति शब्दार्णवः ।

३–इस विशेषणसे यह सूचित किया कि तेरा पति जीवित है ।

त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहम् विद्धि यः अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्राम्यताम् प्रोषितानाम् वृन्दानि मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः त्वरयति ॥ ३९ ॥

अर्थः–" हे सुहागिन ! मुझको अपने पतिका प्रिय मित्र हृदयमें रखे हुए उस पतिके सन्देशोंसे तेरे समीप आनेवाले मेघको जान, जो स्त्रियोंकी वेणी खोलनेमें उत्कंठित मार्गमें विश्राम पानेवाले प्रवासियोंके समूहोंको गम्भीर और प्रिय शब्दोंसे शीघ्रता कराता है " ॥ ३९ ॥

भावार्थः–" हे सौभाग्यवति ! तेरे भर्ताका प्रियमित्र मैं मेघ तुझसे कहनेके निमित्त उसके संदेशको मनमें रखके तेरे समीप आया हूं ऐसा जान, मैं केवल सन्देशे पहुँचानेवालाही नहीं किन्तु स्त्रियोंके केशपाश खोलनेमें उत्सुक प्रवासियोंके समूहको अपने गम्भीर और प्रिय शब्दोंसे स्थानपर जानेको शीघ्रता करानेवाला हूं अर्थात् जब साधारण पुरुषोंका इतना उपकार करता हूं तो फिर मित्रोंके विषयमें तो कहनाही क्या है " ॥ ३९ ॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव ॥
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य ! सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ॥ ४० ॥

पदच्छेदः–इति आख्याते पवनतनयम् मैथिली इव उन्मुखी सा त्वाम् उत्कंठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य च एव श्रोष्यति अस्मात् परम् अवहिता सौम्य ! सीमन्तिनीनाम् कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः सगमात् किञ्चित् ऊनः ॥ ४० ॥

१–पतिके परदेशमें जानेपर उसी दिन बांधी हुई वेणी जबतक वह न आवे, तबतक नहीं खोले, यह " प्रोषितभर्तृका " का धर्म है और मेघदर्शन होनेपर प्रवासी पुरुषोंको स्त्रीसे मिलनेकी इच्छा होती है, इस आशयसे यह कहा है ।

अन्वयः-इति आख्याते पवनतनयम् मैथिली इव सा उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया त्वाम् वीक्ष्य सम्भाव्य च अस्मात् परम् अवहिता श्रोष्यति एव हे सौम्य ! सीमन्तिनीनाम् सुहृदुपगतः कान्तोदन्तः संगमात् किंचित् ऊनः ॥ ४० ॥

अर्थः-इस प्रकार कहनेपर पवनकुमारको सीताके समान वह यक्षकी स्त्री ऊपरको है मुख जिसका ऐसी उत्कंठासे विकसित है अन्तःकरण जिसका ऐसी होती हुई तुझको देखकर और संमान करके इससे आगे सावधान होती हुई श्रवण करेगी। हे साधो ! स्त्रियोंको मित्रके द्वारा प्राप्त हुआ पतिका वृत्तान्त संगमसे कुछही कम होता है ॥ ४० ॥

भावार्थः-इस प्रकार कहनेके अनन्तर, सीता हनुमानको अपने पतिका विश्वस्तदूत मानकर उसके भाषणको सुननेमें जैसी उत्कंठित हुई थी, उसी प्रकार मेरी प्रियाका अन्तःकरण प्रफुल्लित होगा वह मुख ऊपरको करके तुझको मेरा मित्र मानकर देखेगी और सावधान चित्तसे सब वृत्तान्त सुनेगी, इसमें संशय नहीं। क्योंकि हे साधो ! मित्रके मुखसे प्राप्त हुआ पतिका वृत्तान्त स्त्रियोंको प्रत्यक्ष संगसे किञ्चित् ही न्यून सुख देता है ॥ ४० ॥

तामायुष्मन् ! मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ॥

१-सीता अशोकवाटिकामें बैठी हुई थी। इतनेहीमें हनुमान् रामचन्द्रका दूतपना स्वीकार करके सीताकी खोजमें लंकापुरीमें गये। वहां सीताको देखकर छुडानेके विषयमें आश्वासन दिया तब सीताके मनकी जैसी स्थिति हुई थी वैसी इस प्रसंगमे यक्षकी स्त्रीकी होगी, ऐसा अभिप्राय है। सीता और हनुमान्की उपमासे यक्षकी स्त्रीका पतिव्रतापन और मेघका दूतगुणसंपन्नत्व व्यंजित होता है। दूतके गुण रत्नाकरग्रंथमें कहे हैं, जैसे—

" ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः।
धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत् ॥ "

२-" नारी सीमन्तिनी वधूः " इत्यमरः।

अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः—त्वाम् आयुष्मन् मम च वचनात् आत्मनः च उपकर्तुम् ब्रूयाः एवम् तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः कुशलम् अबले पृच्छति त्वाम् वियुक्तः पूर्वाभाष्यम् सुलभविपदाम् प्राणिनाम् एतत् एव ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे आयुष्मन् ! मम वचनात् च आत्मनः उपकर्तुम् ताम् एवम् ब्रूयाः हे अबले ! तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः वियुक्तः त्वाम् कुशलम् पृच्छति । तथा हि सुलभविपदाम् प्राणिनाम् एतत् एव पूर्वाभाष्यम् भवति ॥ ४१ ॥

अर्थः—हे आयुष्मन् ! मेरे कहनेसे और अपनेको उपकार करके कृतार्थ करनेको इस प्रकार कथन कर, "हे स्त्री ! तेरा प्रियपति रामगिरिपर्वतके आश्रमोंमें निवास करता हुआ जीवन धारण करता हुआ वियुक्त होकर तुझको कुशल पूछता है"। क्योंकि अनायासही विपत्तियोंको प्राप्त होनेवाले प्राणियोंका यही प्रथम पूछने योग्य होता है ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे चिरंजीव ! मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करके अपनेको परोपकारसे कृतार्थ करनेके निमित्त तूँ जाकर उससे इस प्रकार कहो कि "हे अबले ! तेरा प्रियपति रामगिरिके आश्रमोंमें सुखपूर्वक है। तुझसे वियुक्त होकर तूँ कुशल है ना ? इस प्रकार पूछता है। क्योंकि अकारण विपत्तिको प्राप्त होनेवाले प्राणियोंको प्रथम कुशल पूछना ही योग्य है ॥ ४१ ॥

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ॥

१—इस श्लोकका चौथा चरण भरत, रामनाथ और हरिगोविन्द ये टीकाकार आगे लिखे अनुसार मानते हैं जैसे—"भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत् ।" अर्थ—क्योंकि प्राणियोंके नाशवान् शरीरोंका यह कुशलही समाधानका कारण है, ऐसा अर्थ करते हैं ।

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः-अङ्गेन अङ्गम् प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम् सास्रेण अश्रुद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उत्कंठितेन उष्णोच्छ्वासम् समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती संकल्पैः तैः[१] विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥ ४२ ॥

अन्वयः-किंच दूरवर्त्ती वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः सः तनुना गाढतप्तेन सास्रेण उत्कंठितेन समधिकतरोच्छ्वासिना अङ्गेन प्रतनु तप्तम् अश्रुद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासम् अङ्गम् तेः संकल्पैः विशति ॥ ४२ ॥

अर्थः-और दूर रहनेवाला शत्रुप्रारब्धसे रोका गया है मार्ग जिसका ऐसा वह तेरा पति दुर्बल, अत्यन्त तापको प्राप्त होनेवाले आंसुओंसे सहित, उत्कण्ठायुक्त, अत्यन्त सांस लेनेवाले, शरीरसे दुर्बल, सन्तापयुक्त, आंसुओंसे भीजे हुए निरन्तर उत्कण्ठावाले, गरम सांस लेते हुए शरीरको उन मनोरथोंसे प्रवेश करता है ॥ ४२ ॥

भावार्थः-दूर देशमें पड़ा हुआ और तेरे समीप आनेका जिसका मार्ग प्रारब्धरूप शत्रुने रोक लिया है ऐसा वह तेरा पति अपनी अनुभवकी हुई दुःखकी दशाको तेरे विषयमें इस प्रकार कल्पना करता है कि जिस प्रकार मेरा शरीर विरहसे दुर्बल और सन्तापयुक्त है इसी प्रकार तूँ भी वियोगके दुःखसे दुर्बल होकर कामज्वरसे जलती होगी। जैसे मैं तेरे स्मरणसे वारंवार नेत्रोंमें जल लाता हूं और तेरे मिलनेमें अत्यन्त उत्कंठित होता हूं, उसी प्रकार तूँभी सर्वदा दुःखके आंसुओंसे स्नान करनेवाली होकर मिलनेमें अत्यन्त आतुर होगी और विरहके दुःखसे मैं जैसे बड़ी बड़ी स्वास लेता हूं उसी प्रकार तूभी लेती होगी ॥ ४२ ॥

१-सनातन और मल्लिनाथको छोडकर बाकी टीकाकार 'तैः' के स्थानमें 'ते' पाठ मानते हैं वस्तुतः यह पाठही योग्य प्रतीत होता है क्योंकि तत् शब्दका यहां विशेष उपयोग नहीं दीखता ।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः—शब्दाख्येयम् यत् अपि किल ते यः सखीनाम् पुरस्तात् कर्णे लोलः कथयितुम् अभूत् आननस्पर्शलोभात् सः अतिक्रांतः श्रवणविषयम् लोचनाभ्याम् अदृश्यः त्वाम् उत्कण्ठाविरचितपदम् मन्मुखेन इदम् आह ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे अबले ! सखीनाम् पुरस्तात् आननस्पर्शलोभात् शब्दाख्येयम् यत् वचनम् अपि कर्णे कथयितुम् लोलः अभूत् किल श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः तथा लोचनाभ्याम् अदृश्यः सः ते प्रियः त्वाम् उत्कंठाविरचितपदम् इदम् मन्मुखेन आह ॥ ४३ ॥

अर्थः—हे अबले ! सखियोंके आगे मुखस्पर्श करनेकी इच्छासे शब्दसे कहनेके योग्य जो वचन भी कानमें कहनेको उत्सुक हुआ था, निश्चयकरके कानोंके मार्गको अतिक्रमण करनेवाला और नेत्रोंसे नहीं दीखनेवाला वह तेरा प्रियपति तुझको उत्कण्ठासे रचना किये गये हैं शब्द जिसमें ऐसा यह वृत्तान्त मेरे मुखसे कहता है ॥ ४३ ॥

भावार्थः—हे अबले ! तेरी सखियोंके आगे जो वार्त्ता वचनसे कहने योग्य थी, उसकोभी मुखचुम्बनके लोभसे कानमें कहनेको जो उत्कण्ठित होता था; उस प्रियपतिका वार्त्तालाप इस समय दूर होनेके कारण तुझको सुननेको नहीं मिल सकता और तुझको वह दृष्टिगोचर भी नहीं हो सकता इस कारण उत्कण्ठायुक्त शब्दोंसे मेरे द्वारा इस प्रकार कहता है ॥ ४३ ॥

१—वियोगके समय सदृशवस्तुका दर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन और अंगस्पृष्टवस्तुदर्शन ये चार विरही और कामपीडित पुरुषोंके चित्तविनोदके उपाय हैं सोही गुणपताका नामक ग्रन्थमें कहा है—

" वियोगावस्थासु प्रियजनसदृक्षानुभवनम्
ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि
तदंगस्पृष्टानामुपनतवना दर्शनमपि
प्रतीकारोऽनंगव्यथितमनसां कोऽपि गदितः ॥ "
येही चार उपाय चार श्लोकोंमें वर्णित हैं ।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्॥
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति ॥४४॥

पदच्छेदः—श्यामासु अंगम् चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम् वक्त्रच्छायाम् शशिनि शिखिनाम् बर्हभारेषु केशान् उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् हन्त एकस्मिन् क्वचित् अपि न ते चण्डि! सादृश्यम् अस्ति ॥ ४४ ॥

अन्वयः—श्यामासु अंगम् चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम् शशिनि वक्त्रच्छायाम् शिखिनाम् बर्हभारेषु केशान् तथा प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि तथा अपि हन्त! क्वचित् एकस्मिन् वस्तुनि अपि ते सादृश्यम् न अस्ति ॥४४॥

अर्थः—प्रियंगु नामवाली लताओंमें शरीरको, भयभीत हरिणीके देखनेमें दृष्टिपातको, चन्द्रमामें मुखकी कान्तिको, मयूरोंके पिच्छोंके समूहोंमें केशोंको और अतिसूक्ष्म नदीकी तरंगोंमें भ्रुकुटीविलासोंको देखता हूं। पर खेद है, हे कोपने! कहीं एक वस्तुमें भी तेरी सदृशता नहीं है ॥ ४४ ॥

भावार्थः—हे सुन्दरि! प्रियंगुलतामें तेरा नाजुकपना, डरी हुई हरिणीके देखनेमें तेरा देखना, चन्द्रमामें तेरे मुखकी कान्ति, मोरोंके पिच्छोंमें तेरे केश और नदियोंकी छोटी छोटी तरंगोंमें तेरा भौं-चलाना मैं देखनेको जाता हूं परन्तु क्या करूं, हे चण्डि! तेरी पूरी पूरी सदृशता किसी वस्तुमेंभी नहीं मिलती ॥ ४४ ॥

१—यहां भ्रूविलासोंको नदीकी तरंगोंकी दी हुई उपमा यथार्थ होनेके लिये तरङ्गोंको प्रतनु कहिये अत्यल्प, यह अनुक्तगुण विशेषण दिया है ऐसा नहीं करते तो भ्रूविला-सोंमें महत्त्वदोष आता और स्वारस्य नष्ट हो जाता, इस कारण और ऐसे दोषानिवा-रणप्रसंगमें उपमानविशेषण अनुक्तगुणग्रहणदूषित नहीं होता है, यह रसरत्नाकरग्रंथमें कहा है

" ध्वन्युत्पादे गुणोत्कर्षे भोगोक्तौ दोषवारणे।
विशेषणादिदोषस्थो नास्त्यनुक्तगुणग्रहः॥ "

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ॥
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ ४५ ॥

पदच्छेदः-त्वाम् आलिख्य प्रणयकुपिताम् धातुरागैः शिलायाम् आत्मानम् ते चरणपतितम् यावत् इच्छामि कर्तुम् अस्रैः तावत् मुहुः उपचितैः दृष्टिः आलुप्यते मे क्रूरः तस्मिन् अपि न सहते संगमम् नौ कृतान्तः ॥ ४५ ॥

अन्वयः-प्रणयकुपिताम् त्वाम् धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य आत्मानम् ते चरणपतितम् कर्तुम् यावत् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् (चित्रे) अपि नौ संगमम् न सहते॥४५॥

अर्थः-प्रीतिपूर्वक कोप करनेवाली तुझको धातुओंके रंगोंसे शिलामें लिखकर, अपनेको तेरे चरणोंमें गिरा हुआ करनेको जबतक इच्छा करता हूं; तबतक वारंवार भरे हुए आंसुओंसे मेरी दृष्टि ढँक जाती है। निर्दयी दैव उस चित्रमें भी हम दोनोंके संगमको नहीं सहता है ॥ ४५ ॥

भावार्थः-हे प्रिये ! प्रेमकी अधिकतासे "तूँ मेरे ऊपर कोप कर रही है" ऐसा तेरा चित्र गेरू सिंगरफ आदि धातुओंसे शिलापर काढ कर "तुझे मनानेके निमित्त तेरे चरणोंमें पडा हूं" ऐसे अपने चित्रको देखनेकी ज्योंही मैं इच्छा करता हूं त्योंही आंखोंमें भरे हुए आंसुओंकी आडसे कुछ नहीं दीखनेके कारण चित्रलेखन व्यापार बन्द हो जाता है. दैवका निर्दयीपन क्या कहूं, कि हम दोनोंका संग चित्रमें देखकरभी दुष्टको सह्य नहीं होता है ॥ ४५ ॥

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-[1]
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ॥

१-इस श्लोकके आगे नीचे लिखा हुआ श्लोक अनेक पुस्तकोंमें क्षेपकरूपसे लिखा है किसी टीकाकारने इसकी टीकाभी नहीं की है क्योंकि 'श्यामास्वंगम्' इत्यादि-

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ४६ ॥

पदच्छेदः—माम् आकाशप्रणिहितभुजम् निर्दयाश्लेषहेतोः लब्धायाः ते कथम् अपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु पश्यन्तीनाम् न खलु बहुशः न स्थलीदेवतानाम् मुक्तास्थूलाः तरुकिसलयेषु अश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ४६ ॥

अन्वयः—स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजम् माम् पश्यन्तीनाम् स्थलीदेवतानाम् मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरुकिसलयेषु बहुशः न पतन्ति इति न खलु ॥ ४६ ॥

अर्थः—स्वप्नके दर्शनोंमें मुझसे अतिकठिनसे प्राप्त हुई तेरी, दया रहित आलिंगनरूप हेतुसे आकाशमें फैलाये हैं भुजा जिसने ऐसे मुझको देखते हुए वनदेवताओंके मोतियोंके समान बडे आंसुओंकी बिंदुएँ वृक्षोंके कोमल पत्तोंपर बहुतवार नहीं गिरती हैं, यह नहीं ॥ ४६ ॥

भावार्थः—स्वप्नमें अतिकठिनसे तेरी भेंट होनेपर दृढ आलिंगन देनेके निमित्त आकाशमें हाथ उठानेवाले मुझको देखकर वनदेवताओंके मोतीके जैसे बडे बडे आंसुओंकी बिन्दुएँ वृक्षोंके कोमल पत्तोंपर वारंवार अवश्यही गिरते हैं ॥ ४६ ॥

—पूर्वोक्त श्लोकसे चार श्लोकपर्यंत विरहिजनोंको चार चित्तविनोदके उपाय कविने क्रमसे वर्णन किया है, वहां इस श्लोकके मध्यमें आनेसे पूर्वापरक्रम नहीं रहेगा, वह श्लोक यह है—

" धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले !
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पंचबाणः क्षिणोति ॥
घर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि " ॥

१—देवताओंके आंसू पृथ्वीपर गिरना अशुभलक्षण माना है जैसे—

" महात्मगुरु-देवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।
देशभ्रंशो महद्दुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम् ॥ "

इस कारण यक्षके मरणका भय नहीं है, ऐसा सूचित करनेके निमित्त यह कहा कि वनदेवता अपने आंसुओंको पृथ्वीपर नहीं गिरने देते ।

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ॥
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति ! मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः—भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणाम् ये तत्क्षीरस्रुति-सुरभयः दक्षिणेन प्रवृत्ताः आलिङ्ग्यन्ते गुणवति ! मया ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वम् स्पृष्टम् यदि किल भवेत् अङ्गम् एभिः तव इति ॥ ४७ ॥

अन्वयः—देवदारुद्रुमाणाम् किसलयपुटान् सद्यः भित्त्वा तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः ये तुषाराद्रिवाताः दक्षिणेन प्रवृत्ताः हे गुणवति ! पूर्वम् एभिः वातैः तव अंगम् स्पृष्टम् भवेत् यदि किल इति मया आलिङ्ग्यन्ते ॥ ४७ ॥

अर्थः—देवदारु नामक वृक्षोंके कोमल पत्तेरूपी ढकनेको शीघ्रही तोडकर उन देवदारुओंके रसके चूनेसे सुगंधित हिमालयकी पवन दक्षिणमार्गसे चल रही हैं। हे गुणवति ! जो पहिले इन पवनोंने तेरे शरीरका यदि स्पर्श किया हो तो निश्चयकरके इस बुद्धिसे मुझसे आलिंगित किये जाते हैं ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे गुणवती प्रिये ! देवदारु वृक्षके कोमल पत्तोंको तत्काल भेदन करके चुए हुए रससे सुगन्धित होकर चलनेवाली इन पवनोंने हिमालय पर्वतपर प्रथम तेरा अवश्य स्पर्श किया होगा, यह समझकर मैं उन पवनोंको स्पर्श करता हूं ॥ ४७ ॥

संक्षिप्येत क्षण इव मया दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ॥

१—निरुक्तिकार कहते हैं कि वायुका केवल स्पर्श होता है और वह अभूत है इस कारण आलिगन नहीं हो सकता फिर भी 'आलिंग्यन्ते' ऐसा कहा है यह यक्ष उन्मत्त अवस्थामें था इस कारण उसका प्रलपित है अत एव कोई दोष नहीं है इसपर मल्लिनाथ कहते है कि ऐसा कहनेवाला निरुक्तिकारही उन्मत्त है क्योंकि जिसका स्पर्श हो सकता है उसका आलिंगन होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है यह प्रत्यक्ष है ।

इत्थं चेतश्चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४८ ॥

पदच्छेदः-संक्षिप्येत क्षणः इव मया दीर्घयामा त्रियामा सर्वावस्थासु अहः अपि कथम् मन्दमन्दातपम् स्यात् इत्थम् चेतः चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनम् मे गाढोष्माभिः कृतम् अशरणम् त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४८ ॥

अन्वयः-मया दीर्घयामा[1] त्रियामा[2] क्षणः इव कथम् संक्षिप्येत ? अहः अपि सर्वावस्थासु मन्दमन्दातपम् कथम् स्यात् ? हे चटुलनयने ! इत्थम् दुर्लभप्रार्थनम् मे चेतः गाढोष्माभिः[3] त्वद्वियोगव्यथाभिः अशरणम् कृतम् ॥४८॥

अर्थः-बडी बडी हैं पहर जिसमें ऐसी रात्रि मुझसे क्षणभरके समान किस प्रकार छोटी की जाय ? दिन भी सब समयमें अति-मन्द धूपवाला किस प्रकार हो ? हे चंचलनेत्रवाली ! इस प्रकार दुर्लभ है प्रार्थना जिसकी ऐसा मेरा चित्त अत्यन्त तीव्र तेरे वियो-गकी व्यथाओंसे नहीं है रक्षा करनेवाला जिसका ऐसा कर दिया गया है ॥ ४८ ॥

भावार्थः-जिसके तीनों पहर बडी प्रतीत होती हैं ऐसी रात्रि क्षण बराबर कैसे हो ? और दिनभी सब कालमें तापरहित कैसे हो ? हे चंचलाक्षि ! इस प्रकारके अप्राप्य मनोरथोंसे भरा हुआ मेरे अन्तःकरणको तेरे वियोगकी अत्यन्त तीव्र व्यथाने अनाथ कर दिया है ॥ ४८ ॥

१-विरहके कारण बडे प्रतीत होनेवाले ।

२-रात्रिके पहिले पहरका पूर्वार्द्ध और पिछले पहरका उत्तरार्ध इनकी दिनमें गणना है इस कारण रात्रिका नाम ' त्रियामा ' कहा है इस प्रकार क्षीरस्वामी कहते हैं परन्तु वस्तुतः आदिके पहरका पूर्वार्द्ध और अन्तके पहरका उत्तरार्द्ध संध्याकाल होता है रात्रिकी तीनही पहर शेष रहती है ।

३-"तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्णं चण्डमुष्णं समं स्मृतम् ।" इति हलायुधः ।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ॥
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ?
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४९ ॥

पदच्छेदः—ननु आत्मानम् बहु विगणयन् आत्मना एव अवलम्बे तत् कल्याणि ! त्वम् अपि सुतराम् मा गमः कातरत्वम् । कस्य अत्यन्तम् सुखम् उपनतम् दुःखम् एकान्ततः वा ? नीचैः गच्छति उपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४९ ॥

अन्वयः—ननु बहु विगणयन् आत्मानम् आत्मना एव अवलम्बे तत् हे कल्याणि ! त्वम् अपि सुतराम् कातरत्वम् मा गमः । कस्य अत्यन्तम् सुखम् उपनतम् वा एकान्ततः दुःखम् ? किन्तु दशा चक्रनेमिक्रमेण नीचैः च उपरि गच्छति ॥ ४९ ॥

अर्थः—हे प्रिये ! बहुत गिनता हुआ अपनेको अपने आप ही धारण करता हूं इस कारण हे सुभगे ! तूँ भी अत्यन्त घबराहटको मत प्राप्त हो । किसको अत्यन्त सुख प्राप्त है या अत्यन्त दुःख; किन्तु अवस्था पहियेकी धारके फिरनेके समान नीचेको और ऊपरको जाती है ॥ ४९ ॥

भावार्थः—हे प्रिये ! तेरे सुखके निमित्त अनेक प्रकारके उपाय मनमें विचार करनेवाला मैं जैसे तैसे अपने जीवितको धारण करता हूं इस कारण हे सुभगे ! तूँभी मेरी दुर्दशाको श्रवण करके किंचि

१—यह अव्यय आमन्त्रणार्थक है ।

२—यहां अडागम होकर 'अगमः' ऐसा रूप होना चाहिये परन्तु माङ्का योग होनेसे (६ । ४ । ७४) इस सूत्रके अनुसार अडागमका निषेध होनेके कारण 'गमः' ऐसा रह गया ।

३—" क्रमः शक्तौ परीपाट्याम् "—इति विश्वः ।

४—सोही नीतिमेंभी कहा है—" चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ "

न्मात्रभी भय मत कर । देख तो ! क्या किसीको सुख या दुःख सदा एकसा रहता है? परन्तु सुख और दुःख प्रत्येक प्राणीको पहियेके धारकी चालकी समान वारंवार प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चंद्रिकासु क्षपासु ॥ ५० ॥

पदच्छेदः-शापान्तः मे भुजगशयनात उत्थिते शार्ङ्गपाणौ शेपान् मासान् गमय चतुरः लोचने मीलयित्वा पश्चात् आवाम् विरहगणितम् तम् तम् आत्माभिलापम् निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ५० ॥

अन्वयः-शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनात् उत्थिते मे शापान्तः भविष्यति शेषान् चतुरः मासान लोचने मीलयित्वा गमय पश्चात् आवाम् विरहगणितम् तम् तम आत्माभिलापम् परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्यावः ॥ ५० ॥

अर्थः-विष्णु भगवान्के शेपरूपी शय्यासे उठनेपर मेरे शापका अन्त होगा; शेष चार महीनोंको नेत्र मीचकर व्यतीत कर । पीछे हम दोनों वियोगके समय गिने हुए उस उस अपने मनोरथको अतिस्वच्छ चांदनीवाली रात्रियोंमें भोगेंगे ॥ ५० ॥

भावार्थः-शार्ङ्गपाणि श्रीविष्णु भगवान् जब शेषशय्यापरसे उठेंगे तब मेरे शापकी समाप्ति होगी । इस कारण बाकी बचे हुए चार महीनोंको आंखें मीचके किसी प्रकार व्यतीत कर; तदनन्तर विरह कालके मनमें विचारे हुए अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको शरत्कालकी स्वच्छ चांदनीकी रातोंमें यथेच्छ भोग करेंगे ॥ ५० ॥

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा ॥

१-आषाढकी शुक्लद्वादशीके दिन श्रीविष्णुभगवान् निद्राको प्राप्त होते हैं और कार्तिककी शुक्लद्वादशीको जागते हैं यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है ।

सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः—भूयः च आह त्वम् अपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे निद्राम् गत्वा किम् अपि रुदती सस्वरम् विप्रबुद्धा सान्तर्हासम् कथितम् असकृत् पृच्छतः च त्वया मे दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन् काम् अपि त्वम् मया इति ॥ ५१ ॥

अन्वयः—भूयः च आह पुरा शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वम् निद्राम् गत्वा किम् अपि सस्वरम् रुदती विप्रबुद्धा आसीः असकृत् पृच्छतः मे हे कितव ! त्वम् काम् अपि रमयन् मया स्वप्ने दृष्टः इति त्वया सान्तर्हासम् कथितम्॥५१॥

अर्थः—और फिर कहता है, पहिले शय्यापर मेरे कण्ठसे लगी हुई भी तूँ निद्राको प्राप्त होकर किसी कारण ऊंचे स्वरसे रोती हुई जागनेवाली होती थी वारंवार पूंछते हुए मुझको, "हे कपटी ! तूँ किसी स्त्रीको रमण कराता हुआ मुझसे स्वप्नमें देखा गया है" इस प्रकार तुमने कुछ हास्यसहित कहा था ॥ ५१ ॥

भावार्थः—हे अबले ! तेरा पति मेरे द्वारा फिरभी इस प्रकार यह कहता है कि एक समय पूर्वकालमें तूँ शय्यापर मेरे कण्ठसे लिपटी हुई सोती थी तब किसी कारण एकाएकही जोरसे रोती हुई जागी तब "रोनेका कारण क्या है ?" इस प्रकार वारम्वार मैंने पूंछा तो हौलेसे हँसकर तुमने कहा कि "अरे कपटी ! तूँ किसी परस्त्रीके साथ रमण कर रहा था" ऐसा मैंने स्वप्नमें देखा है ॥ ५१ ॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने ! मय्यविश्वासिनी भूः ॥

१–यह कहना मेघका है ऐसा समझना चाहिये ।

२–इस पदसे अपनी स्त्रीको छोडकर अन्य स्त्रीके समीप जाना असम्भव था ऐसा सूचित किया ।

३–यहां यक्षने मेघके द्वारा एकान्तकी गोपनीयवार्ता स्त्रीको कहलाकर भेजी इसका यह कारण है कि मेघ कोई वंचक नहीं है किन्तु अपने पतिका सच्चा मित्र है ।

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

पदच्छेदः—एतस्मात् माम् कुशलिनम् अभिज्ञानदानात् विदित्वा मा कौलीनात् असितनयने ! मयि अविश्वासिनी भूः स्नेहान् आहुः किम् अपि विरहे ध्वंसिनः ते तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे असितनयने ! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् माम् कुशलिनम् विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः किम् अपि स्नेहान् विरहे ध्वंसिनः आहुः अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

अर्थः—हे काले नेत्रवाली ! इस चिह्नके देनेसे मुझको कुशलयुक्त जानकर जनसमूहमें उत्पन्न हुई वार्त्तासे मुझपर विश्वासरहित मत हो, किसी कारणसे भी स्नेह को विरह होनेपर नष्ट होनेवाले कहते हैं परन्तु भोग न होनेसे प्रियवस्तुमें बढ गया है स्वाद जिनका ऐसे होकर प्रेमके समूहरूप होते हैं " ॥ ५२ ॥

भावार्थः—हे असितनयने ! यह एकान्तकी वार्त्ता कहनेपर मुझको कुशलक्षेमसे युक्त जान और पुरुषोंकी बात सुनकर मेरे मरनेकी शङ्का मत कर । वियोग होनेपर स्नेह लीन हो जाते हैं यह कहना ठीक नहीं, मेरे जानते तो वियोगके समयमें इच्छितवस्तुके न मिलनेसे प्रेमसमूह रूप हो जाता है " ॥ ५२ ॥

१—यहां स्नेह प्रेमराशिरूप होते हैं, ऐसा कहा है वस्तुतः दोनों शब्द एकार्थक हैं अवस्थाभेदसे उनका भेद है सोही कहाभी है जैसे—

" आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेमा ।
रतिश्शृंगारो योगवियोगता विप्रलम्भश्च ॥ "

यह रसाकर ग्रन्थमें और भी स्पष्टरीतिसे कहा है जैसे—

" प्रेमा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः ।
रागस्तत्संगबुद्धिः स्यात् स्नेहस्तत्सहवर्त्तनम् ॥
तद्वियोगासहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्त्तनम् ।
शृङ्गारस्तत्समः क्रीडासंयोगः सप्तधा क्रमात् ॥ "

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ॥
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ५३ ॥

पदच्छेदः—आश्वास्य एवम् प्रथमविरहोदग्रशोकाम् सखीम् ते शैलात् आशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् निवृत्तः साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वचोभिः मम अपि प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम् जीवितं धारयेथाः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—प्रथमविरहोदग्रशोकाम् ते सखीम् एवम् आश्वास्य त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् शैलात् आशु निवृत्तः साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वचोभि मम अपि प्रातः-कुन्दप्रसवशिथिलम् जीवितम् धारयेथाः ॥ ५३ ॥

अर्थः—पहिले विरहसे तीव्र शोकवाली तेरी सखीको इस प्रकार आश्वासन देकर शिवजीके बैलसे विदीर्ण किये गये हैं शिखर जिसके ऐसे पर्वतसे शीघ्रही लौटता हुआ पहचानसहित भेजी हुई कुशलवार्त्ता-ओंके उसके वचनोंसे मेरे भी प्रातःकालके कुन्दके पुष्पके समान शिथिल जीवितको धारण कर ॥ ५३ ॥

भावार्थः—पहिले वियोगसे अत्यन्त शोकाकुल होनेवाली मेरी स्त्रीको इस प्रकार समझाकर शिवजीके नन्दिगणने जिसके शिखर छिन्नभिन्न कर दिये हैं ऐसे कैलासपर्वतसे लौटकर शीघ्र आओ और पहिचानसहित भेजे हुए उसके कुशलरूप संदेशोंसे प्रातःकालके कुन्दपुष्पके समान दुर्बल मेरे प्राणोंको रक्षा कर ॥ ५३ ॥

कच्चित्सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे ?
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि ॥
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५४ ॥

१—कुन्दके पुष्प प्रातःकालके समय अत्यन्त निर्जीव होते हैं यह प्रसिद्ध है ।

पदच्छेदः-कच्चित् सौम्य ! व्यवसितम् इदम् बन्धुकृत्यम् त्वया मे प्रत्यादेशात् न खलु भवतः धीरताम् तर्कयामि निःशब्दः अपि प्रदिशसि जलम् याचितः चातकेभ्यः प्रत्युक्तम् हि प्रणयिषु सताम् ईप्सितार्थक्रिया एव ॥ ५४ ॥

अन्वयः-हे सौम्य ! त्वया मे इदम् बन्धुकृत्यम् व्यवसितं कच्चित् ? प्रत्यादेशात् भवतः धीरताम् न तर्कयामि खलु याचितः निःशब्दः अपि त्वम् चातकेभ्यः जलम् प्रदिशसि हि सताम् प्रणयिषु ईप्सितार्थक्रिया एव प्रत्युक्तम् ॥ ५४ ॥

अर्थः-हे साधो ! तुमने मेरा यह बन्धुका कार्य करना निश्चय कर लिया ? 'मैं करूंगा' ऐसा कहनेसे तेरी धीरताको नहीं तर्कना करता हूं । निश्चय करके याचना किया हुआ शब्दरहित भी तूँ चातकोंको जल देता है, क्योंकि सत्पुरुषोंका याचकोंके विषयमें इच्छित कार्य करना ही प्रत्युत्तर होता है ॥ ५४ ॥

भावार्थः-हे सौम्य ! क्या तैंने मुझ मित्रका कार्य करनेका दृढ निश्चय कर लिया ? तेरा दृढ निश्चय हो गया है यह जाननेके निमित्त मुझको प्रत्युत्तरकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि तूँ याचना करनेपर शब्द न करके चातकोंको जल देता है यह युक्तही है कि सत्पुरुष याचकोंको वृथा उत्तर न देकर कार्य सिद्ध करनारूपही प्रत्युत्तर देते हैं ॥ ५४॥

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ॥
इष्टान्देशाञ्जलद ! विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५५ ॥

१-इस श्लोकमें निःशब्दपदमें श्लेष है सत्पुरुषपक्षमें निःशब्द कहिये कुछ भाषण नहीं करना और मेघपक्षमें गर्जना नहीं करना शरत्कालमें मेघ केवल आकाशमें गर्जते है वर्षा नहीं करते हैं और वर्षाकालमें मेघ गर्जते नहीं है परन्तु वर्षा करते है उसी प्रकार सदा सत्पुरुषोंका स्वभाव होता है सोही किसी कविने कहा है—

" गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥ "

पदच्छेदः-एतत् कृत्वा प्रियम् अनुचितप्रार्थनावर्तिनः मे सौहार्दात् वा विधुरः इति वा मयि अनुक्रोशबुद्ध्या इष्टान् देशान् जलद ! विचर प्रावृषा संभृतश्रीः मा भूत् एवम् क्षणम् अपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५५ ॥

अन्वयः-हे जलद ! सौहार्दात् वा विधुरः इति वा मयि अनुक्रोशबुद्ध्या अनुचितप्रार्थनावर्तिनः अपि मे प्रियम् एतत् कृत्वा प्रावृषा संभृतश्रीः इष्टान् देशान् विचर एवम् क्षणम् अपि च ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत् ॥ ५५ ॥

अर्थः-हे मेघ ! मित्रतासे अथवा वियुक्त है इस कारणसे, या मुझपर दयाकी बुद्धिसे अयोग्य प्रार्थनामें आग्रह करनेवाले भी मेरा प्रिय यह कार्य करके वर्षाकालसे वृद्धिको प्राप्त हुई है शोभा जिसकी ऐसा होता हुआ इच्छित देशोंको गमन कर, इस प्रकार क्षणभर भी तेरा बिजलीसे वियोग न हो ॥ ५५ ॥

भावार्थः-हे मेघ ! मैं वियोगसे पीडित हूं. ऐसा जानकर मित्रतासे अथवा मेरे ऊपर दयादृष्टिसे मेरा सन्देशा पहुंचानारूप कार्यको कर और वर्षाकालकी शोभासे शोभित होकर यथेष्ट विचरण कर; मेरे समान तेरा प्रिय बिजलीसे क्षणमात्रभी कभी वियोग न हो ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाकविकालिदासकृतौ मेघदूते खण्डकाव्ये
मुरादाबादवास्तव्य-पण्डित-रामस्वरूपशर्म-
सङ्कलितया सान्वयभाषाटीकया सहित
उत्तरमेघः समाप्तिमितः ॥

१-काव्यके अन्तमें नायक इच्छानुरूप आशीर्वाद दे, ऐसा सारस्वत अलंकार नामक ग्रंथका मत है उसीके अनुसार इस काव्यमें नायक यक्षने बिजलीको मेघकी स्त्री कल्पित करके हे मेघ ! तेरा बिजलीसे वियोग न हो ऐसा अन्तके वाक्यमें आशीर्वाद दिया है ।

अत्रान्ते इमे श्लोकाः क्षेपका दृश्यन्ते—

तस्मादद्रेर्निगदितुमथो शीघ्रमेत्यालकायां
　　यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा
यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्ना-
　　त्तद्गेहिन्याः सकलमवदत्कामरूपी पयोदः ॥

(तं) तत् संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
　　प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ॥

प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
　　केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु[1] ॥

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
　　शापस्यान्ते (न्तं) सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचित्तौ
　　भोगानिष्टानविरत[2]सुखं भोजयामास शश्वत् ॥

इति ।

१–ह्युन्नतेषु, अयुन्नतेषु । २–अभिरत । इत्यपि पाठः क्वचित् ।

(आख्यायिकाकथितभावरसं कवीनां
सन्तोषसन्ततिकरं खलु मेघदूतम् ॥
श्रीकालिदासकविराजकृतौ महीयः
काव्यं समाप्तमभिलाषिकथाप्रबन्धम् ॥ १ ॥
इत्थंभूतं सुचरितमतं मेघदूतं च नाम्ना
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदम् ॥
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणताबुद्धिभावं कवीनां
नत्वार्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥ २ ॥)

समाप्तमिदं मेघदूतम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकानाः-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

आ०
०–१०
०–४
०–१०
२–८
२–०
१–१२
–८
१–८
–१४
१ ०
–१२
–०
–१२

सम्पूर्ण पुस्तकोंका बडा सूचीपत्र अलग है मँगालीजिये ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"वेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण—बम्बई.